अल-रिसाला

मई–जून 2022

अल-रिसाला
मई-जून 2022

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

नक़ल-ए-हुरुफ़ी
सबा जबीं अब्बास

संपादकीय टीम
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, राजेश कुमार

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

ईद-उल-अज़हा स्पिरिट	4
उमरह का सबक़	5
रमी-ए-जिमार का सबक़	7
हज्ज-ए-बदल का मसला	8
आयत-ए-उम्मीद	9
ख़ुदा उम्मीद का ख़ज़ाना	11
आदम और इबलीस का सबक़	14
वक़्त की बरबादी	15
वक़्त की अहमियत	17
कमज़ोर पॉइंट	18
अच्छी औलाद	19
ज़माने को जानिए	21
दौर-ए-मवाक़े	22
सब्र का फ़ायदा	24
पॉलिटिकल एक्टिविज़्म, दावह एक्टिविज़्म	25
दौर-ए-जदीद	27
आज का नौजवान	34
इज़हार-ए-आयात का दौर	35
दौर-ए-हाज़िर की तफ़्सीर	38

वाज़ेह तक़रीर या तहरीर 39
हिकमत का तरीक़ा 40
ख़ुदा के देश में 42
डायरी1986 43
आग़ाज़ के बग़ैर 59
इस्लाम का फ़िक्री इंक़िलाब दूसरी फ़िक्रों पर आज भी ग़ालिब है 61
जन्नत का शौक़ 62
बीमारी मारिफ़त का ज़रिया 64
ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ 65
Remembering Maulana Wahiduddin Khan: Man of Mission 68

ईद-उल-अज़हा स्पिरिट

ईद-उल-अज़हा के हवाले से मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने अपनी डायरी में तास्सुरात दर्ज किए हैं। यहाँ दो तास्सुरात नक़्ल किए जाते हैं—

1. "आज 5 अगस्त को दिल्ली में ईद-उल-अज़हा है। मैं फ़ज्र से पहले उठा। सलात-ए-मग़फ़िरत की नीयत करके दो रकअत नमाज़ पढ़ी। अब जबकि यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, क़रीब की मस्जिद से फ़ज्र की अज़ान की आवाज़ आ रही है। आजकल मैं बहुत कमज़ोर हो गया हूँ। ऐसा मालूम होता है कि शायद अब मेरी मौत क़रीब आ गई है। चुनाँचे फ़ज्र से पहले जब दो रकअत नमाज़ के लिए खड़ा हुआ तो अपने आप यह नीयत दिल में आ गई कि ख़ुदाया! तू मेरी इस नमाज़ को मेरी मग़फ़िरत के लिए क़ुबूल कर ले। अगरचे मेरे किसी अमल की कोई क़ीमत नहीं है, मगर तू इसी को अपनी रहमत के लिए बहाना बना ले और मुझे बख़्श दे। नमाज़ पढ़ते हुए बे-इख़्तियार आँसू निकलने लगे, यहाँ तक कि दाढ़ी आँसुओं से तर हो गई। मेरी ज़बान से यह दुआ निकली कि ख़ुदाया! हज़रत सुलेमान ने तुझसे कहा था—

"هَبْ لِي مُلْكًا لَا يَنْبَغِي لِأَحَدٍ مِنْ بَعْدِي"

"मुझे ऐसी सल्तनत दे, जो मेरे बाद किसी के लिए सज़ा-वार न हो।" (38:35)

मेरे मालिक, मैं तुझसे दरख़्वास्त करता हूँ कि तू मेरे साथ ऐसी रहमत कर, जो तूने किसी के साथ न की हो, वह यह कि तू मुझे बिला-इस्तिहक़ाक़ (un-deserving) बख़्श दे। ख़ुदाया! मेरी

मग़फ़िरत फ़रमा, मेरे वालिदैन की, मेरे बीवी-बच्चों की मग़फ़िरत फ़रमा। ख़ुदाया! उन लोगों की मग़फ़िरत फ़रमा, जिन्होंने इस मिशन में मेरा साथ दिया। या अल्लाह, या अल्लाह, या अल्लाह!"
(डायरी 1987)

2. 22 मई, 1994 को ईद-उल-अज़हा का दिन था। इस दिन के ताल्लुक़ से मौलाना लिखते हैं— "नमाज़ के बाद दिल्ली में एक साहब के यहाँ मिलने गया। घर के एक लड़के ने कहा कि आज यहाँ पानी नहीं आया। लड़के के वालिद ने पुर-फ़ख़्र अंदाज़ में कहा कि हमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हमारे यहाँ पानी का बहुत इंतिज़ाम है। मैंने सोचा कि मेरा हाल तो यह है कि पानी मौजूद हो, तब भी मैं अपने को बे-पानी समझता हूँ, क्योंकि यह एक ख़ुदाई अतिय्या है, न कि मेरी कोई ज़ाती तख़्लीक़ और लोगों का हाल यह है कि वे पानी के बग़ैर भी अपने को पानी वाला समझ रहे हैं। कितना फ़र्क़ है एक इंसान और दूसरे इंसान में।" (डायरी 1994)

उमरह का सबक़

बाद के ज़माने के लिए हदीस-ए-रसूल में बहुत-सी पेशीनगोइयाँ हैं। एक पेशीनगोई के मुताबिक़, बाद के ज़माने में उम्मत के पास माल की फ़राग़त हो जाएगी। वे तफ़रीह के लिए हज और उमरह का सफ़र करने लगेंगे। हदीस के अल्फ़ाज़ ये हैं—

"يَأْتِي عَلَى النَّاسِ زَمَانٌ يَحُجُّ أَغْنِيَاءُ أُمَّتِي لِلنُّزْهَةِ، وَأَوْسَاطُهُمْ لِلتِّجَارَةِ، وَقُرَّاؤُهُمْ لِلرِّيَاءِ وَالسُّمْعَةِ، وَفُقَرَاؤُهُمْ لِلْمَسْأَلَةِ"

"लोगों पर एक ज़माना आएगा, जबकि मेरी उम्मत के मालदार तफ़रीह के लिए हज करेंगे, उनका मिडिल क्लास

तिजारत के लिए और उनके उलमा दिखावे के लिए और उनके ग़रीब लोग माँगने के लिए।"

(तारीख़-ए-बग़दाद, ख़तीब बग़दादी, हदीस नंबर 5433)

आजकल मुसलमानों में उमरह की धूम है। उमरह के लिए लोग इतना ज़्यादा मक्का जाने लगे हैं कि यह तक़रीबन हज के बराबर हो जाता है। ये लोग यह तो जानते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उमरह किया, लेकिन यह नहीं जानते कि रसूलुल्लाह का उमरह के बारे में उस्वा क्या था। हिजरत के बाद 6 हिजरी में रसूलुल्लाह ने मदीना में ऐलान किया था कि उमरह के लिए मक्का जाना है। फिर मदीना से आप तक़रीबन चौदह सौ असहाब के साथ निकले, ताकि मक्का पहुँचकर उमरह करें, लेकिन हुदैबिया के मक़ाम पर पहुँचकर हालात बदल गए। अब आपने नया फ़ैसला लिया। वह यह कि दरमियान-ए-सफ़र से मदीना वापस चले जाएँ और अगले साल 7 हिजरी में दोबारा मक्का जाकर उमरह करें। इस उमरह को इस्लामी तारीख़ में उमरहतुल-क़ज़ा के नाम से जाना जाता है।

रसूलुल्लाह के इस अमल से एक उसूल मिलता है। वह यह कि ज़िंदगी का मंसूबा नाक़ाबिल-ए-तब्दील (unchangeable) मंसूबा नहीं है, बल्कि हालात के तहत है। अगर हालात बदल जाएँ तो मंसूबा भी बदल सकता है, ख़्वाह वह उमरह जैसी मुक़द्दस इबादत का मंसूबा ही क्यों न हो, लेकिन मौजूदा ज़माने में उमरह और हज के लिए भीड़ लगाने वाले इस पैग़ंबराना उसूल को नहीं जानते। वे किसी को अपना दुश्मन समझ लें, तो बराबर दुश्मन ही समझते रहेंगे। अगर किसी से लड़ाई छेड़ दें, तो लड़ाई को बराबर जारी रखेंगे। वे उमरह तो जानते हैं, लेकिन उमरह का सबक़ क्या है, इससे वे बेख़बर हैं।

रमी-ए-जिमार का सबक़

रमी-ए-जिमार का लफ़्ज़ी मतलब है— कंकरी से मारना। रमी-ए-जिमार या रमी हज से मुताल्लिक़ एक इस्लामी अमल है। हज करने वाला दौरान-ए-हज जमरात के मक़ाम पर तीन अलामती शैतानों को कंकर मारता है। यह हज का एक रुक्न है। हज के दिनों में ज़ुल-हिज्जा की दस, ग्यारह और बारह तारीख़ को यह अमल किया जाता है। इसमें हर हाजी पर लाज़िम है कि तीन शैतानों को सात सात कंकर तरतीबवार मारे। यह अमल इस्लाम में पैग़ंबर इब्राहीम अलैहिस्सलाम की सुन्नत के तौर पर जारी है।

रमी-ए-जिमार की हैसियत पहले भी अलामती थी और आज भी इसकी हैसियत अलामती है। रमी-ए-जिमार की हक़ीक़त यह है कि जब किसी इस्लामी अमल के वक़्त शैतान आदमी के दिल में वसवसा डाले, शैतान आदमी को इस्लामी अमल से दूर करने की कोशिश करे, तो इंसान इस वसवसे को जान ले। वह नए इरादे के साथ अपने इस्लामी अमल को जारी रखने का अज़्म करे। रमी-ए-जिमार कोई हक़ीकी वाक़िआ नहीं है, बल्कि वह अपने इरादे को ज़्यादा पक्का करने का एक अलामती (symbolic) तरीक़ा है।

रमी-ए-जिमार के वक़्त ब-ज़ाहिर हाजी अलामती शैतान को कंकरी मारता है, लेकिन हक़ीक़त के एतिबार से वह ख़ुद अपने लिए फ़ैसले का एक ऐलान है। यह फ़ैसला कि मैं शैतान को अपने से दूर रखूँगा, मैं बुरी ख़्वाहिश को अपने पास आने नहीं दूँगा, मैं क़ौल-ओ-अमल की हर बुराई से अपने आपको पाक बनाऊँगा, मैं समाज का एक अच्छा इंसान बनूँगा, घर के अंदर और घर के बाहर मैं किसी को

शिकायत का मौक़ा नहीं दूँगा, मैं समाज में एक बे-मसला इंसान (no problem person) बनकर रहूँगा और अगर कोई बुरा अमल हो जाए, तो फ़ौरन तौबा करूँगा।

मैं समाज में एक नाफ़े इंसान (giver person) बनकर रहूँगा। मुझसे दूसरों को फ़ायदा पहुँचेगा, नुक़सान नहीं। मुझसे दूसरों को ख़ैर मिलेगा, शर नहीं। मेरी ज़िंदगी ख़ुदा की निस्बत से ख़ुदा-रुख़ी होगी, और इंसान की निस्बत से इंसानी दोस्त की।

हज्ज-ए-बदल का मसला

ज़्यादातर फ़ुक़हा की राय है कि जो शख़्स मर जाए और उस पर हज फ़र्ज़ हो गया हो तो उसके वारिस पर वाजिब है कि मरने वाले की तरफ़ से हज करे या उसकी तरफ़ से किसी को हज करवाए, ख़्वाह मरे हुए शख़्स ने हज की वसियत की हो या नहीं। इमाम मालिक का क़ौल है कि मरने वाले की तरफ़ से हज उस वक़्त ज़रूरी है, जबकि उसने वसियत की हो, वरना नहीं, क्योंकि हज उनके नज़दीक जिस्मानी इबादत है, इसमें हज्ज-ए-बदल नहीं होगा।

”جمهور الفقهاء يرىٰ ان من مات و عليه حجة الاسلام وجب علىٰ وليه ان يحج عنه او يجهز من يحج عنه من ماله، سواء اوصىٰ الميت بالحج ام لم يوص۔ وقال الامام مالک، يجب الحج عن الميت ان كان قد اوصىٰ بذٰلک۔ اما اذا لم يوص بالحج فلا يجب الحج عنه۔ لان الحج عنده عبادة بدنية لا تقبل النيابة۔“

इस मसले की बुनियाद सहीह अल-बुख़ारी की एक रिवायत पर है, जिसमें है कि एक औरत ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से दरियाफ़्त किया था कि मेरी माँ ने हज की मन्नत

मानी थी, मगर वह हज किए बग़ैर मर गई। क्या मैं उसकी तरफ़ से हज करूँ? आपने फ़रमाया— 'हाँ!'

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1852)

"إِنَّ أُمِّي نَذَرَتْ أَنْ تَحُجَّ، فَلَمْ تَحُجَّ حَتَّى مَاتَتْ، أَفَأَحُجُّ عَنْهَا؟ قَالَ: نَعَمْ، حُجِّي عَنْهَا"

इस हदीस में उस आदमी का ज़िक्र है जिसने उस एतिबार से हज की नीयत कर रखी हो, जिसमें हज फ़र्ज़ हो जाता है, मसलन नज़र मानना वग़ैरह, मगर अदाएगी से पहले उसकी वफ़ात हो गई। दूसरी ऐसी कोई रिवायत नहीं, जिसमें मरने वाले की तरफ़ से उमूमी तौर पर हज की अदाएगी की हिदायत की गई हो।

मेरे नज़दीक इस मामले में इमाम मालिक का मस्लक सही है। मैं समझता हूँ कि सिर्फ़ माली क़र्ज़ एक ऐसी चीज़ है, जिसमें इस्तिसनाई (exception) तौर पर यह हुक्म है कि मरने वाले की तरफ़ से हर हाल में उसे अदा किया जाए। इबादती मामलों में सिर्फ़ नीयत का एतिबार किया जाएगा। बुख़ारी की मज़्कूरा रिवायत में 'दैन' (क़र्ज़) का लफ़्ज़ है, मगर वह मुहावरे की ज़बान में है, न कि हक़ीक़ी मअनों में। हज का मामला माली क़र्ज़ की तरह नहीं है, जिसे हर हाल में अदा करना ज़रूरी है। (डायरी, 22 सितंबर, 1983)

आयत-ए-उम्मीद

क़ुरआन की एक आयत को आयत-ए-उम्मीद कहा जाता है। इसके अल्फ़ाज़ ये हैं—

"قُلْ يَاعِبَادِيَ الَّذِينَ أَسْرَفُوا عَلَى أَنْفُسِهِمْ لَا تَقْنَطُوا مِنْ رَحْمَةِ اللَّهِ إِنَّ اللَّهَ يَغْفِرُ الذُّنُوبَ جَمِيعًا إِنَّهُ هُوَ الْغَفُورُ الرَّحِيمُ"

"कहो कि ऐ मेरे बंदो, जिन्होंने अपनी जानों पर ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हों। बेशक अल्लाह तमाम गुनाहों को माफ़ कर देता है, वह बख़्शने वाला, मेहरबान है।" (39:53)

क़ुरआन की यह आयत दूसरी आयतों से ब-ज़ाहिर एक अलग आयत है। इस क़िस्म की दूसरी आयतों में आम तौर पर यह होता है कि आदमी अगर अपने गुनाह से तौबा करे और अल्लाह से माफ़ी माँगे तो उम्मीद है कि उसकी बख़्शीश हो जाएगी, मगर इस आयत में इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ नहीं हैं। क़ुरआन की इस आयत में सिर्फ़ यह है कि गुनाहगार आदमी को चाहिए कि वह अल्लाह की रहमत से मायूस न हो, क्योंकि अल्लाह इतना ज़्यादा रहीम-ओ-करीम है कि वह तमाम गुनाहों को माफ़ करने वाला है।

इस आयत में यह कहा गया है कि अल्लाह तमाम गुनाहों को माफ़ कर सकता है, मगर अजीब बात है कि इस आम माफ़ी के साथ तौबा और माफ़ी तलब करने का कोई ज़िक्र नहीं। गोया अगर आदमी के अंदर अल्लाह की रहमत पर सच्चा यक़ीन हो तो अल्लाह की रहमत ख़ुद ही मुतहर्रिक हो जाएगी और वह बंदे के तमाम गुनाहों की माफ़ी का ज़रिया बनेगी। अल्लाह की रहमत पर अगर बंदे के अंदर कामिल यक़ीन है तो उसका यक़ीन अपने आप माफ़ी की सिफ़ारिश बन जाएगा और बंदे के तमाम गुनाहों को माफ़ करके उसके लिए जन्नत मुक़द्दर कर दी जाएगी।

इस आयत से मालूम होता है कि 'अदम-ए-क़ुनूत'— मायूस न होना— एक ऐसा अमल है, जिसकी वजह से इंसान को ख़ुदा की रहमत मिल सकती है यानी इंसान के अंदर कामिल मअनों में 'अदम-ए-क़ुनूत' हो तो अल्लाह की रहमत का तक़ाज़ा होगा कि

लफ़्ज़ी इज़हार के बग़ैर उसके लिए गुनाह से माफ़ी का ज़रिया बन जाए। आयत का यह अंदाज़ इतना ज़्यादा रहमत से भरा हुआ है कि अक्सर उलमा ने यह माना है कि क़ुरआन की यह आयत सबसे ज़्यादा पुर-उम्मीद आयत है—

"أَرْجَى آيَةٍ فِي الْقُرْآنِ"

गोया अल्लाह की रहमत से मायूसी सबसे बड़ी ख़ता है और अल्लाह की रहमत पर यक़ीन सबसे बड़ा अमल।

ख़ुदा उम्मीद का ख़ज़ाना

मौजूदा दौर में मुसलमान मुख़्तलिफ़ क़िस्म की परेशानियों की शिकायत करते हैं। क़ुरआन-ओ-हदीस का मुताला किया जाए तो उनमें ख़ुदा से उम्मीद रखने के हवाले से कई वाक़िआत बयान किए गए हैं, जिनसे मालूम होता है कि इंसान अगर मुश्किलात में ख़ुदा पर अपने एतिमाद को मज़बूत रखे तो उसकी परेशानियाँ हल हो सकती हैं। शर्त सिर्फ़ यह है कि वह सब्र और तक़वे का तरीक़ा इख़्तियार करे और पॉज़िटिव सोच की बुनियाद पर अपनी प्लानिंग करे, जैसा कि नीचे के वाक़िआत से साबित होता है।

हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम तक़रीबन साढ़े चार हज़ार साल पहले इराक़ में पैदा हुए और 175 साल की उम्र पाकर उनकी वफ़ात हुई। उनका वाक़िआ है कि जब वे अपनी बीवी हाजिरा और अपने बेटे इस्माईल को उस मक़ाम पर छोड़कर जाने लगे, जहाँ आज मक्का आबाद है, तो हाजिरा ने कहा कि इबराहीम! हमें इस सहरा में छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं, जहाँ न कोई इंसान है और न कोई और चीज़? फिर हाजिरा ने इब्राहीम से पूछा, "क्या अल्लाह ने आपको इसका हुक्म

दिया है?" इब्राहीम ने कहा, "हाँ!" हाजिरा ने कहा, "फिर तो अल्लाह हमें ज़ाए नहीं करेगा।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3364)

"إذن لا يُضَيِّعُنَا"

इसके बाद ही यह मुमकिन हुआ कि मक्का आबाद हुआ और वह नस्ल ज़ुहूर में आई जिसमें रसूल और अस्हाब-ए-रसूल पैदा हुए, जिनके ज़रिये दुनिया में इस्लाम का इंक़िलाब बरपा हुआ।

हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम का ज़माना तेरहवीं सदी क़ब्ल मसीह का ज़माना है। वे क़दीम मिस्र में आए। उस वक़्त वहाँ फ़िरऔन की हुकूमत थी। बनी-इस्राईल को फ़िरऔन ने ग़ुलाम बना रखा था। जब पैग़ंबर मूसा बनी-इस्राईल को लेकर मिस्र से निकले तो फ़िरऔन ने अपनी फ़ौज के साथ उनका पीछा किया। हज़रत मूसा अपनी क़ौम के साथ ऐसे मक़ाम पर पहुँचे, जहाँ सामने 'रेड सी' (Red Sea) थी और पीछे फ़िरऔन का लश्कर। यह इंतिहाई ख़तरनाक सूरत-ए-हाल थी। इस नाज़ुक मौक़े पर बनी-इस्राईल और मूसा की जो कैफ़ियत थी, उसे क़ुरआन ने इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है—

"فَلَمَّا تَرَٰٓءَا ٱلْجَمْعَانِ قَالَ أَصْحَٰبُ مُوسَىٰٓ إِنَّا لَمُدْرَكُونَ ۔ قَالَ كَلَّآ إِنَّ مَعِىَ رَبِّى سَيَهْدِينِ"

"फिर जब दोनों जमातें आमने-सामने हुईं तो मूसा के साथियों ने कहा कि हम तो पकड़े गए। मूसा ने कहा कि हरगिज़ नहीं, बेशक मेरा रब मेरे साथ है। वह मुझे राह बताएगा। चुनाँचे अल्लाह ने उनकी मदद की और फ़िरऔन अपने लश्कर समेत ग़र्क़ हो गया।" (62-26:61)

पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का वाक़िआ है। 622 ई० में आपने मक्का से मदीना की तरफ़ हिजरत की। यह एक बेहद ख़तरनाक सफ़र था। इस सफ़र के दौरान आपको ग़ार-ए-सौर

में छुपना पड़ा। आपके मुख़ालिफ़ीन, जो आपकी तलाश में निकले थे, वे तलवार लिये हुए ग़ार के मुँह तक पहुँच गए। उस वक़्त आपके वाहिद साथी अबू बक्र सिद्दीक़ थे। उन्होंने यह मंज़र देखा तो कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल, वे तो यहाँ भी पहुँच गए। इसके जवाब में आपने जो कहा, उसे क़ुरआन में इस तरह बयान किया गया है—

"لَا تَحْزَنْ إِنَّ ٱللَّهَ مَعَنَا"

"ग़म न करो, अल्लाह हमारे साथ है।" (9:40)

इस वाक़िए को हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ ने इस तरह रिवायत किया है। आपने कहा—

"مَا ظَنُّک بِاثْنَيْنِ اللهُ ثَالِثُهُمَا"

"उन दो के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है, जिनका तीसरा साथी अल्लाह हो।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 4663)

इस ईमान-ओ-यक़ीन के सफ़र के बाद ही यह मुमकिन हुआ कि मदीना के ज़रिये सारी दुनिया में इस्लाम फैले। ख़ुदा पर यक़ीन आदमी की दाख़िली क़ुव्वतों को मुतहर्रिक करके एक बे-हौसला इंसान को तख़्लीक़ी (creative) इंसान बना देता है। (डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम)

4 जुलाई,1990 को ईद-उल-अज़हा की नमाज़ मैंने तब्लीग़ी जमात की मस्जिद में पढ़ी। वहाँ इंसानों का हुजूम था। वहाँ के माहौल को देखकर एक बात ज़ेहन में आई। दीन के दो पहलू हैं। एक, मआने के एतिबार से और दूसरा, शक्ल के एतिबार से। दीन के इन दोनों पहलुओं का सिलसिला उम्मत में जारी रहेगा, यहाँ तक कि क़यामत आ जाए। मेरा एहसास यह है कि तब्लीग़ी तहरीक मौजूदा ज़माने में दीन के शक्ली पहलू का तसलसुल है और 'अल-रिसाला' का मिशन

दीन के मानवी पहलू का तसलसुल। तब्लीग़ के लोग इस तक़सीम को हरगिज़ नहीं मानेंगे, मगर मेरे नज़दीक हक़ीक़त-ए-वाक़िआ यही है। (मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान, डायरी; 6 जुलाई, 1990)

आदम और इबलीस का सबक़

आदम और इबलीस का क़िस्सा क़ुरआन में कई बार बयान किया गया है। मसलन सूरह अल-बक़रह (2:30-38); सूरह अल-आराफ़ (7:11-25); सूरह अल-हिज्र (15:26-43) वग़ैरह। इस क़िस्से का ख़ुलासा यह है कि अल्लाह ने आदम को पैदा करके फ़रिश्तों और इबलीस को उन्हें सजदा करने के लिए कहा। फ़रिश्तों ने सजदा किया, मगर इबलीस ने सजदा करने से इनकार कर दिया। चुनाँचे वह नुक़सान में रहा।

इबलीस का मामला यह था कि वह एक फ़रमाँ-बरदार मख़्लूक़ था, लेकिन एक मौक़ा आया जबकि उसके लिए प्रैक्टिकल विज़डम यह थी कि वह एक नई मख़्लूक़ आदम के सामने ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ झुक जाए, मगर वह अपने माज़ी की अज़्मत में गुम रहा कि वह नई मख़्लूक़ के मुक़ाबले में एक बरतर मख़्लूक़ है (अल-आराफ़,7:12)। उसने अपनी ख़याली अज़्मत की बिना पर सरकशी (stubbornness) का तरीक़ा इख़्तियार किया और प्रैक्टिकल विज़डम को क़ुबूल न कर सका। इसका नतीजा यह हुआ कि वह हमेशा के लिए ख़ुदा की नज़र में ना-पसंदीदा क़रार पाया। इसके बर-अक्स फ़रिश्तों ने प्रैक्टिकल विज़डम को दो मर्तबा क़ुबूल किया। एक बार तब, जब उन्होंने यह कहा कि नई मख़्लूक़ ज़मीन में फ़साद पैदा करेगी, लेकिन जब अल्लाह ने वज़ाहत की तो उन्होंने

उसे क़ुबूल कर लिया और दूसरी मर्तबा तब, जब अल्लाह ने उनसे कहा कि वे आदम के आगे सजदा करें। इस मर्तबा भी उन्होंने ख़ुदा की बात मान ली। दूसरे अल्फ़ाज़ में, उन्होंने बदले हुए हालात को मान लिया, उन्होंने इबलीस की तरह उज्र (excuse) का तरीक़ा इख़्तियार करके ख़ुदा के पैदा किए हुए हालात से टकराव का रास्ता नहीं चुना।

यह हक़ीक़त में अल्लाह की जानिब से इंसान को सबक़ है कि नई सूरत-ए-हाल पेश आने पर तुम्हारा रवैया इबलीस की तरह कट्टरपन (rigidity) और तंग-नज़री (narrow-mindedness) का नहीं होना चाहिए, बल्कि अपने रवैय्ये में लचक (flexibility) रखो, सूरत-ए-हाल को समझो और उसे क़ुबूल करो। अगर तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम इबलीस की तरह नुक़सान में रहोगे। दूसरे अल्फ़ाज़ में, इसका मतलब यह है कि तुम यह मत देखो कि माज़ी में तुम क्या थे, बल्कि यह देखो कि वक़्त की प्रैक्टिकल विज़डम क्या है और इसे इख़्तियार करो।

वक़्त की बरबादी

क़ुरआन की एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

”لَا خَيْرَ فِي كَثِيرٍ مِنْ نَجْوَاهُمْ إِلَّا مَنْ أَمَرَ بِصَدَقَةٍ أَوْ مَعْرُوفٍ أَوْ إِصْلَاحٍ بَيْنَ النَّاسِ وَمَنْ يَفْعَلْ ذَلِكَ ابْتِغَاءَ مَرْضَاتِ اللَّهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيهِ أَجْرًا عَظِيمًا“

“उनकी अक्सर सरगोशियों में कोई भलाई नहीं। भलाई वाली सरगोशी सिर्फ़ उसकी है, जो सदक़ा करने को कहे या किसी नेक काम के लिए कहे या लोगों में सुलह कराने के

लिए कहे। जो शख़्स अल्लाह की ख़ुशी के लिए ऐसा करे, तो हम उसको बड़ा अज्र अता करेंगे।" (4:114)

अरबी लफ़्ज़ 'नज्वा' का मतलब है सरगोशी (whisper) के अंदाज़ में बात करना, लेकिन यह आयत अपने आम मअनों के एतिबार से हर क़िस्म की गुफ़्तुगू इसमें शामिल है। तौसी मअनों में एतिबार से इसका मतलब यह है कि बेशतर लोग ग़ैर-ज़िम्मेदाराना बातें करते हैं, उनकी बात तक़वे पर मबनी नहीं होती। वे सोचने से पहले बोलते हैं। वे एहसास-ए-ज़िम्मेदारी के बग़ैर कलाम करते हैं। उनके सामने सिर्फ़ दुनिया के तक़ाज़े होते हैं। वे आख़िरत के तक़ाज़े के तहत न सोचते हैं और न बोलते हैं।

ख़ैर या भलाई सिर्फ़ उस कलाम में है, जो जवाबदेही (accountability) के एहसास से बोला जाए। वही कलाम ख़ैर का कलाम है, जिसमें आदमी इस तरह बोले कि वह ख़ुदा के इस क़ानून को याद रखे हुए हो—

"إِذْ يَتَلَقَّى الْمُتَلَقِّيَانِ عَنِ الْيَمِينِ وَعَنِ الشِّمَالِ قَعِيدٌ ۔ مَا يَلْفِظُ مِنْ قَوْلٍ إِلَّا لَدَيْهِ رَقِيبٌ عَتِيدٌ"

"जब दो लेने वाले लेते रहते हैं, जो कि दाईं और बाईं तरफ़ बैठे हैं। कोई लफ़्ज़ वह नहीं बोलता, मगर उसके पास एक मुस्तइद निगराँ मौजूद है।" (क़ुरआन, 50:17-18)

कलाम की दो क़िस्में हैं। एक है ज़िम्मेदाराना कलाम और दूसरा है ग़ैर-ज़िम्मेदाराना कलाम। ग़ैर-ज़िम्मेदाराना कलाम बोलने वाले के लिए एक वबाल की हैसियत रखता है। आदमी को चाहिए कि वह ज़्यादा सोचे और कम बोले। वह इंसान के सामने सोचने से पहले यह याद करे कि वह वक़्त आने वाला है, जबकि अल्लाह रब्बुल आलमीन के सामने वह अपने आपको खड़ा हुआ पाएगा।

उसे बताना होगा कि वह जब बोला तो क्यों बोला, जो बात उसने कही, तो उस बात को कहने के लिए उसके पास जवाज़ (justification) क्या था।

वक़्त की अहमियत

क़ुरआन में नमाज़ का हुक्म इन अल्फ़ाज़ में आया है—

"إِنَّ الصَّلَاةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ كِتَابًا مَوْقُوتًا"

"बेशक नमाज़ मोमिनों पर फ़र्ज़ है, वक़्त की पाबंदी के साथ।" (4:103)

इसका मतलब यह नहीं है कि सिर्फ़ पाँच वक़्त की नमाज़ को औक़ात की पाबंदी के साथ अंजाम देना है और दूसरे कामों में औक़ात की पाबंदी ज़रूरी नहीं। इस आयत का मतलब यह है कि मुसलमान वह है, जिसकी ज़िंदगी में वक़्त की पाबंदी एक अहम हिस्से की तरह शामिल हो जाए, वह हर काम को वक़्त की पाबंदी के साथ अंजाम देने लगे और वह इसी उसूल-ए-आम के मुताबिक़ नमाज़ भी वक़्त के पूरे एहतिमाम के साथ अदा करे।

वक़्त की पाबंदी कोई सादा बात नहीं। वक़्त की पाबंदी का ताल्लुक़ ज़िंदगी के नज़्म से है। ज़िम्मेदार इंसान को चाहिए कि वह अपने हर काम को डिसिप्लिन के साथ अंजाम दे। वक़्त की पाबंदी का मतलब सिर्फ़ अपने औक़ात को नियमित अंदाज़ में अंजाम देना नहीं है, बल्कि इसका एक इज्तिमाई पहलू भी है, क्योंकि आदमी समाजी प्राणी (social animal) है। एक आदमी जब अपना काम नियमित अंदाज़ में अंजाम देता है, तो वह दूसरों की यह मदद करता है कि वह भी किसी रुकावट के बग़ैर अपने काम को मुनज़्ज़म अंदाज़ में अंजाम दे।

वक़्त की पाबंदी का गहरा ताल्लुक़ दूसरे इंसानों के साथ ख़ैर-ख़्वाही से है। वक़्त की पाबंदी ज़िम्मेदार इंसान की अलामत है। ज़िम्मेदार इंसान यह नहीं सोच सकता कि वह वक़्त के मामले में ग़ाफिल हो। हक़ीक़त यह है कि जब आप वक़्त ज़ाए करते हैं तो यह कोई सादा बात नहीं है, बल्कि यह एक डबल ग़लती का इर्तिकाब होता है— अपने वक़्त के साथ-साथ दूसरों के वक़्त को ज़ाए करना भी होता है। वक़्त की अहमियत इतनी ज़्यादा है कि इसे घटाकर बयान करना मुमकिन नहीं।

कमज़ोर पॉइंट

एक हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ में आई है—

"لَمَّا صَوَّرَ اللهُ آدَمَ فِي الْجَنَّةِ تَرَكَهُ مَا شَاءَ اللهُ أَنْ يَتْرُكَهُ، فَجَعَلَ إِبْلِيسُ يُطِيفُ بِهِ، يَنْظُرُ مَا هُوَ، فَلَمَّا رَآهُ أَجْوَفَ عَرَفَ أَنَّهُ خُلِقَ خَلْقًا لَا يَتَمَالَكُ"

"जब अल्लाह ने जन्नत में इंसान की साख़्त बनाई तो अल्लाह ने उसे एक मुद्दत के लिए वहाँ बाक़ी रखा। फिर इबलीस आया। वह आदम के चारों तरफ़ घूमने लगा यानी देखने लगा कि वह क्या है। फिर उसने देखा कि वह खोखला (hollow) है। उसने जान लिया कि आदम की तख़्लीक़ इस तरह हुई है कि उसके अंदर तमालुक की सिफ़त नहीं।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 6815)

"لَا يَتَمَالَكُ"

" 'तमालुक की सिफ़त नहीं' का मतलब है— अपनी ख़्वाहिशात और जज़्बात पर कंट्रोल न कर पाना।"

इंसान के अंदर तमालुक की सिफ़त क्यों नहीं है, क्योंकि इंसान के अंदर अना (ego) का जज़्बा बहुत ज़्यादा ताक़तवर है। यह इंसान का एक 'वीक पॉइंट' है। यह जज़्बा इंसान की सारी सरगर्मियों में काम करता है। 'इगो' के फ़ित्ने का सबसे ज़्यादा ख़तरनाक पहलू यह है कि इंसान अपने हर अमल का एक जवाज़ (justification) तलाश कर लेता है। वह ग़लत काम भी करता है तो इसका एक बहाना उसके पास होता है। वह ग़लत काम को इस यक़ीन के साथ करता है कि वह एक दुरुस्त काम है। यह एक ख़ुद-फ़रेबी की बदतरीन सूरत है। यह अना का जज़्बा है, जिसकी वजह से वह अपने ख़िलाफ़ बात पर भड़क उठता है और इंतिक़ाम (revenge) के पीछे पड़ जाता है।

आदमी को चाहिए कि वह फ़ितरत के वाक़िआत से हमेशा पॉज़िटिव सबक़ ले यानी मबनी-बर-मारिफ़त सबक़। मनफ़ी यानी नेगेटिव सबक़ लेना फ़ितरत के निज़ाम के मुताबिक़ नहीं। बिला शुबा इंसान के लिए सबसे बड़ी तबाहकुन बात यह है कि वह अना का शिकार हो जाए। ख़ुदा की मारिफ़त अपनी सही सूरत में इसका रोक है। ख़ुदा की मारिफ़त वाहिद ताक़तवर मुहर्रिक है, जो इंसान को 'इगोइस्ट' बनने से बचाता है। ख़ुदा की मारिफ़त के बग़ैर कोई इंसान 'इगो' के फ़ित्ने से बच नहीं सकता। 'इगोइस्ट' आदमी ज़मीर की बात नहीं सुनेगा, लेकिन जो आदमी मारिफ़त के मामले में संजीदा हो, वह ज़रूर उसे सुनेगा।

अच्छी औलाद

हर शादीशुदा आदमी की यह तमन्ना होती है कि उसके यहाँ अच्छी औलाद पैदा हो। इस मामले में ग़ौर-ओ-फ़िक्र के बाद मैंने यह समझा है कि अच्छी औलाद की ख़्वाहिश दरअस्ल अल्लाह से

अच्छी औलाद की तमन्ना करना है। अल्लाह का क़ानून यह है—

"لَئِنْ شَكَرْتُمْ لَأَزِيدَنَّكُمْ وَلَئِنْ كَفَرْتُمْ إِنَّ عَذَابِي لَشَدِيدٌ"

"अगर तुम शुक्र करोगे तो मैं तुमको ज़्यादा दूँगा और अगर तुम ना-शुक्री करोगे तो मेरा अज़ाब बड़ा सख़्त है।"

(क़ुरआन, 14:7)

इस पर ग़ौर करने से मैंने यह समझा है कि किसी आदमी की पहली ज़िम्मेदारी यह है कि वह अपनी शादी को शुक्र का मौज़ू बनाए। शादी ख़्वाह ब-ज़ाहिर आदमी की पसंद के मुताबिक़ हो या उसके ख़िलाफ़। हर हाल में वह शादी को शुक्र के आइटम के तौर पर ले। वह अपने लाइफ़ पार्टनर को शुक्र के आइटम के तौर पर क़ुबूल करे। हर हाल में वह इससे शुक्र का आइटम दरियाफ़्त करे। इंसान अगर ऐसा करे तो यह उसके लिए अल्लाह से शुक्र के हम-मा'नी बनेगा। उसके हक़ में क़ुरआन की मज़्कूरा आयत सादिक़ आएगी।

इस आयत का मतलब यह होगा कि शादी से मिलने वाली ख़ातून को वह शुक्र के तौर पर क़ुबूल करे, तो उसके बाद उसके साथ शुक्र का एक इज़ाफ़ी जुज़ उसे हासिल होगा यानी अच्छी औलाद। अच्छी औलाद बिला शुबा किसी इंसान के लिए सबसे बड़ी नेमत है। अच्छी औलाद किसी इंसान के लिए अच्छी ज़िंदगी का आग़ाज़ है। अच्छी औलाद किसी इंसान के लिए ज़िंदगी की अच्छी तामीर का बहुत बड़ा ज़रिया है। अच्छी औलाद गोया अमली मअनों में अच्छी ज़िंदगी का आग़ाज़ है वग़ैरह।

हर आदमी को अमली मअनों में अच्छी ज़िंदगी के आग़ाज़ के लिए अच्छी औलाद की ज़रूरत है और यह ज़रूरत हर इंसान के अपने हाथ में है। पहली नेमत बीवी को शुक्र के साथ क़ुबूल करो, तो उसके बाद अल्लाह की तौफ़ीक़ से तुम्हें अच्छी औलाद हासिल

होगी। हासिलशुदा बीवी पर राज़ी होना अपने आपमें दुआ की एक सूरत है। इसका मतलब यह है कि बंदे ने रब से यह कहा कि ख़ुदाया, पहली चीज़ जो मुझे आपने दी, यह ब-ज़ाहिर मुझे नापसंद है, मगर उसे मैंने क़ुबूल किया। अब दूसरी पसंदीदा चीज़ मुझे दे दे। यह गोया शुक्र के एक आइटम पर शुक्र के दूसरे आइटम का इज़ाफ़ा है।

ज़माने को जानिए

क़दीम ज़माने में क़बाइली हालात की बिना पर दुनिया में 'जंग कल्चर' का रिवाज था। मौजूदा ज़माने में यह मुमकिन हो गया है कि अम्न के ज़रिये आसानी के साथ चीज़ों को हासिल किया जा सके। क़दीम ज़माने में इंसान यह समझता था कि उसे जो कुछ भी मिलेगा, वह तलवार के ज़रिये मिलेगा। चुनाँचे कहा जाता था—

"ہر کہ شمشیر زند سکہ بنامش خوانند"

"जो तलवार का माहिर होता है,

उसी के नाम का सिक्का चलता है।"

मौजूदा ज़माना इसके बर-अक्स है। मौजूदा ज़माना टकराव के बजाय गुफ़्तुगू की मेज़ पर इख़्तिलाफ़ को हल करने का ज़माना है। क़दीम ज़माने में 'जंग कल्चर' को मक़बूलियत हासिल थी, जबकि मौजूदा ज़माने में अम्न को ख़ैर-ए-आला (summum bonum) की हैसियत हासिल है। जदीद दौर में बातचीत (negotiation) के ज़रिये चीज़ों को हासिल करना मुमकिन हो गया है।

जो मुमालिक इस फ़र्क़ को समझते हैं, उन्होंने अमलन अपने यहाँ 'जंग कल्चर' को तर्क करके 'अम्न कल्चर' को तरजीह दी।

इस फ़र्क़ को दूसरे अल्फ़ाज़ में इस तरह बयान किया जा सकता है कि ये मुमालिक दौर-ए-जंग से निकलकर दौर-ए-अम्न में दाख़िल हो गए हैं। जिन क़ौमों को तरक़्क़ी-याफ़्ता क़ौमें कहा जाता है, वे अपनी हक़ीक़त के एतिबार से तालीम-याफ़्ता क़ौमें हैं। चुनाँचे इन क़ौमों ने अपनी तमाम सरगर्मियों को तालीम-रुख़ी सरगर्मी बना दिया है। अब तरक़्क़ी-याफ़्ता दुनिया में सबसे ज़्यादा अहमियत तालीम को दी जाती है। तालीम से मुराद है मॉडर्न तालीम, न कि रिवायती तालीम।

इस मामले में ग़ालिबन एक ही इस्तिसना (exception) है और यह इस्तिसना मुस्लिम क़ौम का है। मुसलमान आज भी हथियारबंद टकराव की बात करते हैं। हालाँकि अब उसका दौर ख़त्म हो चुका है। अब यह करना है कि तालीम और तिजारत के मवाक़े को तलाश किया जाए और इसे मंसूबाबंदी के ज़रिये इस्तेमाल किया जाए। आजकल मुसलमानों के लिखने और बोलने वाले एक लफ़्ज़ बहुत बोलते हैं। वह लफ़्ज़ है— 'मुस्लिम एंपावरमेंट'। मैं समझता हूँ कि इस मामले में पहला काम यह है कि मुसलमान क़दीम रिवायती तर्ज़-ए-फ़िक्र को छोड़ें और जदीद तहज़ीब से सबक़ लेकर नए हालात के मुताबिक़ अपने क़ौमी निशाने की नए सिरे से मंसूबाबंदी करें। मुसलमानों की कामयाबी मॉडर्न ज़माने की दरियाफ़्त पर निर्भर है, न कि जदीद दौर को अपना मुख़ालिफ़ीन समझकर इससे टकराव करने पर।

दौर-ए-मवाक़े

मैंने मुसलमानों को यह मशवरा दिया कि वे दूसरी क़ौमों से टकराव का रास्ता इख़्तियार करने के बजाय सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करें। इस बिना पर बहुत-से लोग मेरे बारे में यह कहते थे कि वे तो बुज़दिली की तालीम देते हैं। वे मेरे बारे में यह इल्ज़ाम-तराशी करते

थे कि मैं यह कहता हूँ कि मुख़ालिफ़ीन के सामने सिर को झुका दो। इस तरह की बातें एक अर्से तक कही जाती रहीं, मगर मैंने इस तरह के प्रोपेगंडे के जवाब में कुछ भी नहीं कहा। मैंने वही तरीक़ा इख़्तियार किया, जो मशहूर उर्दू शाइर हाली (1837-1915) ने कहा है –

"क्या पूछते हो क्योंकर सब नुक्ता-चीं हुए चुप,
सब कुछ कहा उन्होंने, पर हमने दम न मारा।"

यहाँ तक कि उनमें से कुछ लोगों के ऊपर सच्चाई वाज़ेह हुई। उन्होंने अपने रिसालों और अख़बारों में हमारी बातें छापना शुरू कर दिया। हक़ीक़त यह है कि यही सब्र है। सब्र हिकमत है, सब्र पॉज़िटिव नफ़्सियात है। अस्ल यह है कि मौजूदा ज़माने में पुराने ज़माने के मुक़ाबले जंग को इंतिहाई ना-पसंदीदा अमल क़रार दे दिया गया है। इस दौर में इख़्तिलाफ़ को ख़त्म करने का ज़रिया डायलॉग है, टकराव नहीं। इसकी वजह यह है कि क़दीम दौर में मवाक़े पर सिर्फ़ हुक्मराँ तबक़े के पास यकतरफ़ा इख़्तियार (monopoly) हुआ करता था। इसके बर-अक्स, मौजूदा ज़माना मवाक़े के सैलाब (opportunity explosion) का ज़माना है। नए ज़माने का आदर्श है — हर मौक़ा हर एक के लिए।

इस दूसरे दौर में दावत-ए-इस्लामी का नया दौर शुरू होता है। मवाक़ों के सैलाब का यह दौर एक दाई को यह मौक़ा देता है कि वह टकराव के बजाय सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करके लोगों तक ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाए। क़ुरआन के मुताबिक़, मौजूदा दुनिया में मसाइल भी हैं और इसी के साथ मवाक़े भी (94:5)। मसाइल इंसान की पैदावार हैं। इसके मुक़ाबले में मवाक़े ख़ालिक़ की नेमत हैं। आप इस मामले में पॉज़िटिव ज़ेहन पैदा कीजिए। आप मसाइल को नज़र-अंदाज़ कीजिए और सब्र का तरीक़ा इख़्तियार करके मवाक़ों को तलाश कीजिए और उन्हें इस्तेमाल कीजिए।

सब्र का फ़ायदा

क़ुरआन की एक आयत यह है—

"وَجَعَلْنَا بَعْضَكُمْ لِبَعْضٍ فِتْنَةً أَتَصْبِرُونَ"

"और हमने तुम्हें एक-दूसरे के लिए आज़माइश बनाया है। क्या तुम सब्र करते हो?" (25:20)

दूसरे अल्फ़ाज़ में, इस आयत का मतलब यह है कि ना-पसंदीदा हालात पेश आने पर अपने जज़्बात पर कंट्रोल रखो, ताकि तुम्हारे लिए मवाक़ों को इस्तेमाल करना मुमकिन हो। जज़्बात से मग़लूब होकर अमल करने का नतीजा हमेशा नाकामी होता है और जज़्बात को क़ाबू में रखकर अमल करने का नतीजा हमेशा कामयाबी। इब्न-ए-अब्बास ने इस आयत की तफ़्सीर इस तरह की है— "मैंने तुम सबको एक-दूसरे के लिए आज़माइश बनाया है, ताकि तुम जो भी ना-पसंदीदा बात सुनो या इख़्तिलाफ़ देखो तो सब्र करो और दुरुस्त रास्ता इख़्तियार करो।" (तफ़्सीर अल-बग़वी, जिल्द 6, सफ़्हा 77)

अस्ल यह है कि मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़, मौजूदा दुनिया में हर इंसान को कामिल आज़ादी हासिल है। इस बिना पर हमेशा ऐसा होता है कि हर इंसान अपने अच्छे-बुरे को देखकर कदम उठाता है। यह इक़्दाम मुकम्मल मअनों में दूसरों के मुताबिक़ नहीं रहता। ब-ज़ाहिर इसका कुछ हिस्सा आपके ख़िलाफ़ होगा, तो कुछ आपके मुवाफ़िक़ होगा। इस दुनिया के लिए फ़ितरत का क़ानून यही है कि यहाँ किसी शख़्स या गिरोह को ना-मुकम्मल मवाक़े (partial opportunities) मिलें, किसी को भी यहाँ मुकम्मल मवाक़े हासिल नहीं होते। इसलिए समझदारी यह है कि ना-मुवाफ़िक़ पहलुओं को

नज़र-अंदाज़ किया जाए और मुवाफ़िक़ पहलुओं को दरियाफ़्त करके उन्हें इस्तेमाल किया जाए।

यह हक़ीक़त एक हदीस-ए-रसूल से मज़ीद वाज़ेह होती है—

"إِنَّ اللهَ عَزَّ وَجَلَّ لَيُؤَيِّدُ الْإِسْلَامَ بِرِجَالٍ مَا هُمْ مِنْ أَهْلِهِ"

"अल्लाह इस्लाम की मदद ऐसे लोगों से करेगा, जो अहल-ए-इस्लाम में से न होंगे।"

(अल-मुअज्जम अल-कबीर लिल-तबरानी, हदीस नंबर 14640)

यानी इस हदीस में यह बताया गया है कि एक इंसान, जिसका इस्लाम से कोई ताल्लुक़ नहीं है, वह अपने ज़ाती मफ़ाद के लिए कदम उठाता है। इस इक़्दाम का मक़सद अपने ज़ाती मफ़ाद को हासिल करना होता है, लेकिन इसी के साथ ऐसा होता है कि एक नई सूरत-ए-हाल पैदा होती है। यह नई सूरत-ए-हाल नए मवाक़े खोलती है। अगर अहल-ए-इस्लाम मज़्कूरा इंसान के मज़हब और फ़िक्र को नज़र-अंदाज़ करें तो वे नए मवाक़े को इस्तेमाल करके अपने दीन और दुनिया दोनों में मदद ले सकते हैं।

पॉलिटिकल एक्टिविज़्म, दावह एक्टिविज़्म

अहल-ए-इस्लाम के लिए इज्तिमाई ज़िंदगी में काम करने के दो तरीक़े हैं— पॉलिटिकल एक्टिविज़्म (political activism) और दावह एक्टिविज़्म (dawah activism)। पॉलिटिकल एक्टिविज़्म का निशाना यह होता है कि पॉलिटिकल पावर पर क़ब्ज़ा किया जाए और अपनी हुकूमत क़ायम की जाए। इसके मुक़ाबले में दावह एक्टिविज़्म मुकम्मल तौर पर एक ग़ैर-सियासी एक्टिविज़्म है। दावह

एक्टिविज़्म अपने तरीक़-ए-कार के एतिबार से शुरू से आख़िर तक पुर-अम्न एक्टिविज़्म होता है। पॉलिटिकल एक्टिविज़्म का निशाना सियासी इक़्तिदार पर क़ब्ज़ा करना होता है और दावह एक्टिविज़्म का निशाना लोगों के दिलों को बदलना और उन्हें अपने ख़ालिक़ का सच्चा बंदा बनाना है।

पॉलिटिकल एक्टिविज़्म का निशाना दुनियावी फ़ायदों को हासिल करना होता है। इसके बजाय दावह एक्टिविज़्म का निशाना यह होता है कि जन्नती मुआशरे के लिए अफ़राद तैयार किए जाएँ, जिसे क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

"فَأُولَئِكَ مَعَ الَّذِينَ أَنْعَمَ اللَّهُ عَلَيْهِمْ مِنَ النَّبِيِّينَ وَالصِّدِّيقِينَ وَالشُّهَدَاءِ وَالصَّالِحِينَ وَحَسُنَ أُولَئِكَ رَفِيقًا"

"वह उन लोगों के साथ होगा जिन पर अल्लाह ने इनाम किया; पैग़ंबर और सिद्दीक़ और शहीद और सालेह। कैसी अच्छा है उनका साथ।" (4:69)

पॉलिटिकल एक्टिविज़्म का निशाना सियासी इक़्तिदार हासिल करना होता है। इसके बर-अक्स दावह एक्टिविज़्म का निशाना जन्नत हासिल करना होता है। यही दोनों क़िस्म की तहरीकों की पहचान है। दावह एक्टिविज़्म में सारा निशाना अल्लाह रब्बुल आलमीन की रज़ा होती है। दावह एक्टिविज़्म मुकम्मल तौर पर ख़ुदारुख़ी एक्टिविज़्म (God-oriented activism) है। इसके बर-अक्स पॉलिटिकल एक्टिविज़्म अव्वल से आख़िर तक सियासतरुख़ी (politics oriented) तहरीक है। दावह एक्टिविज़्म में फ़रिश्ते इंसान के मददगार होते हैं और इससे ख़ैर फैलता है। इसके बर-अक्स पॉलिटिकल एक्टिविज़्म से मनफ़ी सोच पैदा होती है, इससे शर फैलता है।

दौर-ए-जदीद

पंडित जवाहरलाल नेहरू हिंदुस्तान की एक मारूफ़ शख़्सियत थे। वे 1947 से 1964 तक हिंदुस्तान के प्रधानमंत्री रहे। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी किताब 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' में लिखा है कि हिंदुस्तान में सबसे ज़्यादा कमी जिस चीज़ की है, वह 'साइंटिफ़िक टेंपर' (scientific temper) है। साइंटिफिक टेंपर का मतलब जवाहरलाल नेहरू के नज़दीक यह है कि चीज़ों में ग़ौर-ओ-फ़िक्र करना और उन्हें सोच-समझकर दलील की बुनियाद पर मानना, न कि सिर्फ़ सुनकर मान लेना।

The refusal to accept anything without testing and trial, the capacity to change previous conclusions in the face of new evidence, the reliance on observed fact and not on pre-conceived theory.
(The Discovery of India, by Jawaharlal Nehru, Oxford, 1994, p. 512)

दूसरे लफ़्ज़ों में इसका मतलब है— 'रेशनल' और 'लॉजिकल' तर्ज़-ए-फ़िक्र डेवलप करना। (Scientific temper refers to an attitude of logical and rational thinking.)

मौजूदा ज़माने को 'एज ऑफ़ रीज़न' (Age of Reason) कहा जाता है। 'एज ऑफ़ रीज़न' का मतलब है — आज़ाद फ़िक्र (free thinking) का दौर या 'फ्री इंक्वायरी'(free enquiry) का दौर। 'एज ऑफ़ रीज़न' ने तारीख़ में पहली बार सोचने की राह में तमाम रुकावटों का ख़ात्मा कर दिया। 'फ्री इंक्वायरी' में हर चीज़ जो रुकावट बनती थी, वह सब हट गई। इस हक़ीक़त की तरफ़ इस

हदीस-ए-रसूल में इशारा है—

"إِنَّ اللهَ لَيُؤَيِّدُ هَذَا الدِّينَ بِالرَّجُلِ الفَاجِرِ"

"बेशक अल्लाह इस दीन की मदद फ़ाजिर इंसान के ज़रिये करेगा।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3062)

दौर-ए-जदीद के एतिबार से इस हदीस-ए-रसूल का मतलब यह है कि ग़ैर-मुस्लिम, ग़ैर-मज़हबी इंसानों के ज़रिये बरपा किए हुए साइंसी और फ़िक्री इंक़िलाब से दीन की मदद होगी।

साइंस और तअक़्क़ुल-पसंदी (rationalism) दोनों अपनी हक़ीक़त के एतिबार से एक हैं। साइंस ने दरअस्ल पहली बार इल्मी ग़ौर-ओ-फ़िक्र के लिए एक क़ाबिल-ए-एतमाद फ्रेमवर्क (reliable framework) दिया यानी अक़्ली फ्रेमवर्क (rational framework)। साइंस के दौर से पहले इंसान के पास आज़ादाना फ्रेमवर्क (independent framework) नहीं था। इल्म के हर शोबे में 'मज़हबी अक़ीदे' का ग़लबा था यानी चीज़ों को सिर्फ़ सुनकर आस्था के नाम पर मान लेना। साइंस या तअक़्क़ुल-पसंदी का कॉन्ट्रिब्यूशन यह है कि इसने इंसान को यह रास्ता दिया कि वह किसी चीज़ को सिर्फ़ सुनकर न मान ले, बल्कि वह उसकी तहक़ीक़ करे और जब तहक़ीक़ में वह बात साबित हो जाए, तो दलील की बुनियाद पर वह इसे माने। इस्लाम इसी की तालीम देता है। (अल-हुजुरात, 49:6)

क़दीम दौर, जदीद दौर

राकेश शर्मा (पैदाइश:1949) पहले हिंदुस्तानी एस्ट्रोनॉट थे। उन दिनों हिंदुस्तान में यह गुफ़्तुगू का मौज़ू बना हुआ था। चुनाँचे इस हवाले से हिंदुस्तान के अंग्रेज़ी रोज़नामा 'द टाइम्स ऑफ़ इंडिया' (20 अप्रैल, 1984) में एक दिलचस्प लतीफ़ा नक़्ल किया गया था—

"Rakesh's journey into space, says the narrator, was tabled for discussion in our house. Every member of the family was expressing his or her opinion on the subject. Then my youngest daughter asked: 'Dad, can I become the first Indian spacewoman?' 'Yes dear,' replied the grandmother, 'you will be the first Indian spacewoman. I will consult Pandit Girdhar Vyas and see what is in store for you in your kundali?' My eldest son, Arun, interjected, 'Grandma , you should consult the Russian leader, not astrologers'."

"ख़ला में राकेश शर्मा का सफ़र घर में बहस का मौज़ू बना हुआ था। घर का हर फ़र्द इस मौज़ू पर अपनी राय का इज़हार कर रहा था। एक दिन खाने की मेज़ पर, जबकि घर के सब लोग जमा थे, मेरी छोटी बेटी ने पूछा, 'पापा, क्या मैं पहली हिंदुस्तानी एस्ट्रोनॉट ख़ातून बन सकती हूँ?' दादी ने प्यार से जवाब दिया, 'यक़ीनन तुम पहली हिंदुस्तानी एस्ट्रोनॉट ख़ातून बन सकती हो। इस सिलसिले में मैं पंडित गिरधर व्यास को तुम्हारी जन्मपत्री दिखाकर उनसे पूछूँगी कि तुम्हारी कुंडली में क्या लिखा हुआ है?' यह सुनकर मेरे बड़े बेटे अरुण ने मदाख़लत करते हुए कहा, 'दादी माँ, आपको रूसी लीडर से मशवरा करना चाहिए, ज्योतिषियों से नहीं'।"

यह लतीफ़ा बताता है कि वह क्या फ़र्क़ है, जो पुराने ज़माने और नए ज़माने के दरमियान है। क़दीम ज़माने में इल्म नाम था क़ियासात (speculation) का, मगर मौजूदा ज़माने में इल्म नाम है मुताले और तजुर्बे के ज़रिये दरियाफ़्तशुदा हक़ीक़त का। यही वजह है कि आज का एक तालीम-याफ़्ता नौजवान ख़ला (space) के सफ़र के मामले को ज्योतिषी से पूछने के बजाय एस्ट्रोनॉमी (astronomy) के माहिरीन से पूछने पर ज़ोर देता है।

जदीद इंसान के सामने इस्लाम को पेश करने के लिए इस फ़िक्री तब्दीली का लिहाज़ करना बहुत ज़रूरी है। इस्लाम अगरचे पूरी तरह एक साइंटिफ़िक मज़हब (scientific religion) है, मगर इसे पेश करने वाले, मज़्कूरा दादी माँ (grandmother) की तरह, ग़ैर-साइंसी अंदाज़ में पेश करते हैं। इस वजह से ऐसा होता है कि जो इल्ज़ाम हक़ीक़तन दाई के सिर आना चाहिए था, वह ग़ैर-ज़रूरी तौर पर इस्लाम के सिर आ जाता है।

फ्री इंक्वायरी

अस्ल यह है कि क़दीम ज़माने में इंसान पहले मज़हब या समाजी रिवायत के जाल में फँसा हुआ था। हर चीज़ मज़हब की जाँच-पड़ताल (scrutiny) में चली जाती थी। जहाँ हर चीज़ को जायज़-नाजायज़, हलाल-ओ-हराम के फ्रेमवर्क में देखा जाता है। इसका नतीजा यह था कि कोई फ़िक्री तरक़्क़ी (intellectual development) नहीं हो पाती थी, मगर साइंस ने हर चीज़ को 'फ्री इंक्वायरी' का मौज़ू बना दिया। मसलन क़दीम ज़माने में ऐसा नहीं होता था कि कुछ अहल-ए-इल्म बैठें, जिनमें कुछ लोगों के हाथों में शराब की बोतल हो, मगर मजलिस के लोग इसे नज़र-अंदाज़ करके किसी मौज़ू पर डिस्कशन करें। मज़हब में इसका तसव्वुर नहीं किया जा सकता था। साइंसी दौर ने यह किया कि ज़ाती चीज़ें जो की इंसान का अपना फ़ेल है और हक़ाइक़ (facts) को अलग कर दिया। हक़ाइक़ को कोई भी डिस्कवर कर सकता है, ख़्वाह वह ज़ाती एतिबार से कैसा भी इंसान हो।

मसलन पहले कोई मेयार (criterion) नहीं था, जिसकी बुनियाद पर लड़ाई को बंद किया जाए, क्योंकि क़दीम ज़माने में लड़ाइयाँ मज़हब के नाम पर लड़ी जाती थीं। इस वजह से वे मुक़द्दस बनी हुई थीं। मुक़द्दस वजह से मुसलमानों में वह जिहाद बन गई और

ईसाइयत में इसे 'क्रूसेड्स' का नाम दिया गया और जो आदमी इसके लिए लड़कर मर जाए, उसे शहीद कहते थे। तक़द्दुस के इस तसव्वुर की वजह से जंग की रोकथाम नहीं हो पाती थी।

'रेशनल एज' में यह मुमकिन हो गया कि किसी भी क़िस्म की पाबंदी के बग़ैर चीज़ों की फ्री इंक्वायरी की जाए। रेशनल एज की वजह से यह सोच कमज़ोर हो गई है कि अक़ीदे की बुनियाद पर किसी चीज़ के हराम या हलाल होने का फ़ैसला किया जाएगा। रेशनल एज में जो बात हुई, वह यही थी कि फ्री इंक्वायरी का हक़ इंसान को मिल गया। मिसाल के तौर पर क़दीम दौर में मज़हब को फ़ैसलाकुन हैसियत हासिल थी, फिर मज़हब के नाम पर बादशाह और मज़हबी पेशवा को फ़ैसलाकुन हैसियत मिल गई। उनकी ज़बान से निकलने वाला हर लफ़्ज़ क़ानून था। इस वजह से जो भी इख़्तिलाफ़ करता, उसकी सज़ा मौत थी। इस क़िस्म का मुहावरा इसी दौर की तर्जुमानी करता है—

"जान की अमान पाऊँ तो अर्ज़ करूँ।"

दौर-ए-जदीद ने इस मोनोपॉली को ख़त्म कर दिया है। अब ऐसी कोई रुकावट नहीं है। अब फ्री इंक्वायरी को हर इंसान का बुनियादी हक़ तस्लीम किया गया है।

दौर-ए-जदीद का एक अतिय्या

यह दौर कैसे पैदा हुआ? कहा जाता है कि क़दीम हिजरी दौर (stone age) में एक बार दो आदमियों के दरमियान किसी बात पर शदीद इख़्तिलाफ़ पैदा हो गया। इख़्तिलाफ़ यहाँ तक बढ़ा कि दोनों के दरमियान लड़ाई शुरू हो गई। दोनों एक-दूसरे को पत्थर मारने लगे। इसी पत्थरबाज़ी के दरमियान एक वाक़िआ पेश आया। वह यह कि एक आदमी का पत्थर दूसरे आदमी के पत्थर से टकरा गया। उस

वक़्त दोनों पत्थरों के दरमियान चमक दिखाई दी। चमक देखकर दोनों अपनी लड़ाई भूल गए और दोनों ने अपने-अपने पत्थरों को लेकर सोचना शुरू कर दिया कि कहाँ से रोशनी आई। इब्तिदाई तौर में यह दरियाफ़्त हुआ कि आम मअनों में यह रोशनी नहीं थी, बल्कि दोनों पत्थरों के दरमियान से निकलने वाली वक़्ती चिंगारी थी।

इस सोच को बग़ैर किसी क़ैद के आगे बढ़ने के लिए जिस चीज़ की ज़रूरत थी, वह फ्री इंक्वायरी का माहौल था। यह फ्री इंक्वायरी का माहौल क़दीम दौर में मुमकिन नहीं था, बल्कि इसका आग़ाज़ जदीद दौर में हुआ है। इस दौर को जम्हूरियत का दौर भी कहा जाता है। जम्हूरियत का मतलब है दूसरों को क़ुबूल करना।

Democracy means acceptance of others.

इख़्तिलाफ़ का मसला

दौर-ए-जदीद में जिन पॉज़िटिव बातों का आग़ाज़ हुआ है, उनमें से एक यह है कि अब ब-ज़रिया तलवार इख़्तिलाफ़ को दूर करने का ज़माना ख़त्म हो चुका है और राय के इख़्तिलाफ़ (dissent) को राय तक महदूद रखकर टकराव (conflict) को ख़त्म करने के दौर का आग़ाज़ हुआ है। क़दीम ज़माने में जब इख़्तिलाफ़ पैदा होता था, तो इसका ख़ात्मा सिर्फ़ तलवार के ज़रिये हुआ करता था। क़दीम अरब का यह मुहावरा इसी हक़ीक़त की तर्जुमानी है— "اَلقَتْلُ اَنْفَى لِلْقَتْلِ" यानी क़त्ल, क़त्ल के लिए सबसे बड़ी रोक है; मगर अब यह फ्रेमवर्क बदल चुका है।

मौजूदा दौर में इख़्तिलाफ़ के ख़ात्मे का 'सपोर्टिंग स्ट्रक्चर' (supporting structure) बदल गया है। अब सामूहिक तबाही के हथियारों (weapons of mass destruction) ने दोनों फ़रीक़ों को इस बात पर मजबूर कर दिया है कि दोनों पार्टियाँ इख़्तिलाफ़

का ख़ात्मा गुफ़्तुगू की मेज़ पर करें। दूसरी आलमी जंग ने, ख़ुसूसन जापान की तबाही ने, तमाम दुनिया को इससे रोक दिया है कि वे इख़्तिलाफ़ का ख़ात्मा ब-ज़रिया जंग करें।

Weapons of Mass Destruction (WMD) do serve as a deterrent to a global conflict. The destructive capabilities of the WMD were on full display over Japan at the end of World War II, and no one wants to go through something like that again.

इख़्तिलाफ़ ब-ज़रिया जंग का दौर अब ख़त्म हो गया है। इसकी एक और वजह यह भी है कि इंसान को 'तलवार' की बुनियाद पर फ़ैसले का बदल मिल गया है और वह है 'डिस्सेंट' (dissent) यानी इख़्तिलाफ़-ए-राय को एतिदाल के दायरे में रखना, उसे नफ़रत और नज़ा तक न पहुँचने देना। इंसान की अक़्ल ने इस बात को समझ लिया है कि इख़्तिलाफ़-ए-राय की बुनियाद पर पैदा होने वाले टकराव को अक़्ल की सतह पर मैनेज (manage) किया जा सकता है। पहले ज़माने में हालत यह थे कि इख़्तिलाफ़ को ब-ज़ोर-ए-ताक़त सख़्ती के साथ दबाया जाता था। यूरोप के हवाले से इसकी तफ़्सील विलियम ड्रेपर (वफ़ात:1882) की किताब 'मारका मज़हब व साइंस' (History of the Conflict Between Religion and Science, 1875, London, p. 373) में देखी जा सकती है।

मगर यह सिर्फ़ यूरोप का मसला नहीं था, सारी दुनिया में यही तरीक़ा राइज था। इसके बर-अक्स मौजूदा दौर में बातचीत की सतह पर इख़्तिलाफ़ का ख़ात्मा किया जाता है। यह वही दौर है, जिसे एक हदीस-ए-रसूल में 'ला इलाहा इल्लल्लाह' के ज़रिये क़िला फ़तह करना कहा गया है (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2920) यानी पुर-अम्न अंदाज़ में बातचीत के ज़रिये इख़्तिलाफ़ को मैनेज करके मक़सद हासिल करना।

आज का नौजवान

मौजूदा ज़माने को 'एज ऑफ़ रीज़न' (age of reason) कहा जाता है, मगर आज के मुस्लिम नौजवान दीन के बारे में कन्फ्यूज़न में जीते हैं। इसका सबब यह है कि इनके ज़ेहन में मज़हब के बारे में न ज़माने की निस्बत से सवालात उठते हैं। इनके सवालों के जवाबात रिवायती अंदाज़ में दिए जाते हैं यानी वे जवाबात जो 'यह करो और वह न करो' (dos and donts) के उसूल पर मबनी होते हैं। इस तरह के जवाब से उन नौजवानों का ज़ेहन एड्रेस नहीं होता। यही वह चीज़ है जिसने आज के नौजवानों को अमलन मज़हब से दूर कर दिया है और दिन-ब-दिन मज़हब से दूरी इख़्तियार करने वाले अफ़राद की तादाद में इज़ाफ़ा होता जा रहा है।

क़ुरआन में कहा गया है—

"وَقُلْ لَهُمْ فِي أَنْفُسِهِمْ قَوْلًا بَلِيغًا"

"और उनसे ऐसी बात कहो, जो उनके दिलों में उतर जाए।"

(4:63)

क़ुरआन की इस आयत का मतलब यह है कि बात ऐसे उस्लूब में कहो, जिससे मुख़ातब का ज़ेहन ऐड्रेस हो। इस क़ुरआनी हिदायत के मुताबिक़ ज़ाहिरी एतिबार से दावत के मुख़्तलिफ़ उस्लूब हो सकते हैं। उस्लूब हमेशा मुख़ातब के एतिबार से मुतअय्यन होगा। पहले मुख़ातब का मुताला किया जाएगा और फिर उसके ज़ेहन के एतिबार से ऐसा उस्लूब इख़्तियार किया जाएगा, जो उसके ज़ेहन को अपील करने वाला हो। दाई के लिए ज़रूरी है कि वह अपने आपको इस एतिबार से तैयार करे कि वह मदऊ को वक़्त के उस्लूब में ख़ुदा

का पैग़ाम पहुँचा सके, जिससे उसका ज़ेहन एड्रेस हो। जिस दावती कलाम में यह सिफ़त न हो, वह गोया ऐसी दावत है, जिसमें दावती तक़ाज़े मौजूद नहीं।

मॉडर्न माइंड को एड्रेस करने के लिए ज़रूरी है कि जो बात कही जाए, वह अक़्ल पर मबनी (reason-based) हो यानी ऐसा उस्लूब इख़्तियार करना, जो लोगों के लिए अक़्ली सतह पर दीन को क़ाबिल-ए-फ़हम बनाए। यह ज़माना अक़्ली तौर पर समझने-समझाने का ज़माना है। कोई और उस्लूब आज के इंसान के लिए असरदार नहीं हो सकता। अक़्ली दलाइल की रोशनी में बातों को समझाने का तरीक़ा क्या होता है, उसकी तफ़्सील के लिए मेरी किताब 'इज़हार-ए-दीन' का मुताला किया जा सकता है।

इज़हार-ए-आयात का दौर

क़ुरआन के नुज़ूल का ज़माना 609 से 632 ईस्वी का ज़माना है। यह वह दौर है, जबकि इंसानी तरक़्क़ी अभी साइंस की दरियाफ़्तों तक नहीं पहुँची थी। दुनिया में अभी अम्न का ज़माना नहीं आया था, दुनिया में अभी दौर-ए-शमशीर (तलवार का दौर) बाक़ी था। उस वक़्त क़ुरआन में मुस्तक़बिल के बारे में एक तारीख़ी पेशीनगोई की गई थी।

क़ुरआन की एक मुताल्लिक़ आयत के अलफ़ाज़ ये हैं—

"سَنُرِيهِمْ آيَاتِنَا فِي الْآفَاقِ وَفِي أَنْفُسِهِمْ حَتَّى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ الْحَقُّ"

"अन-क़रीब हम उनको अपनी निशानियाँ दिखाएँगे, आफ़ाक़ में भी और ख़ुद उनके अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाएगा कि यही हक़ है।" (41:53)

यह आयत हिजरत से पहले नाज़िल हुई। इस पेशीनगोई पर हज़ार साल से ज़्यादा की मुद्दत गुज़र चुकी है। इससे अंदाज़ा किया जा सकता है कि क़ुरआन की यह पेशीनगोई सातवीं सदी के बाद के ज़माने में यक़ीनी तौर पर ज़ुहूर में आनी चाहिए। इसलिए अब यक़ीन के साथ कहा जा सकता है कि अब वह वक़्त आ चुका है कि हम यह मालूम करें कि कायनाती निशानियों के ज़रिए हक़ को साबित करने का यह दौर कब आया। हक़ को साबित करने का मामला कायनाती निशानियों के ज़ुहूर से पहले का मामला नहीं है, बल्कि यह उसके बाद का मामला है और मॉडर्न साइंस ने कायनाती निशानियों को ज़ाहिर करना शुरू कर दिया है।

क़ुरआन की मज़्कूरा आयत से मालूम होता है कि ब-ज़ाहिर हक़ के इज़हार का एक दर्जा पैग़ंबर-ए-इस्लाम के ज़माने में बाक़ी था; कायनाती निशानियों की सतह हक़ का इज़हार, जो मुस्तक़बिल में ज़ाहिर होने वाला था। यक़ीनी तौर पर यह कहा जा सकता है कि अब साइंसी दौर में वह ज़ाहिर हो चुका है। दूसरे अल्फ़ाज़ में, क़ुरआन की एक वज़ाहत वह है, जो नुज़ूल-ए-क़ुरआन के ज़माने में हुई, लेकिन एक और वज़ाहत बाक़ी थी, जो बाद के ज़माने में पूरी हुई यानी साइंसी डिस्कवरीज़ की बुनियाद पर होने वाली वज़ाहत।

मेरे मुताले के मुताबिक़ आयत में जिस हक़ के साबित होने का ऐलान सातवीं सदी ईस्वी के पहले हिस्से में किया गया था, वह अब यक़ीनी तौर पर एक वाक़िआ बन चुका है। इसलिए अब यह दरियाफ़्त करने का वक़्त है कि इस हक़ की वज़ाहत से मुराद क्या है, ताकि इसे अपने इल्म का हिस्सा बनाया जाए और ऐसी तफ़्सीर-ए-क़ुरआन लिखी जाए, जो रिवायती दौर के उलेमा के तशरीहात पर मबनी न हो, बल्कि दौर-ए-हाज़िर की दरियाफ़्तशुदा मालूमात पर मबनी हो।

जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा, मुसलमानों के लिए दौर-ए-हाज़िर में क़ुरआन के तक़ाज़ों का जानना मुमकिन न होगा। दौर-ए-हाज़िर के सवालों का जवाब उलमा-ए-सलफ़ की किताबों में नहीं मिलेगा, बल्कि इसका जवाब जब भी मिलेगा, वह दौर-ए-हाज़िर के अहल-ए-इल्म की किताबों में मिलेगा। क़ियास यह है कि इसमें वे ग़ैर-मुस्लिम अफ़राद या गिरोह शामिल हैं, जिनके बारे में हदीसों में आता है कि वे दीन की सपोर्ट करेंगे—

"إِنَّ اللهَ جَلَّ وعَزَّ لَيُؤَيِّدُ الإِسْلَامَ بِرِجَالٍ مَا هُمْ مِنْ أَهْلِهِ"

(अल-मुअज्जम अल-कबीर लिल-तबरानी, हदीस नंबर 14640)

इस रिवायत के मुताबिक़ जो लोग इस हक़ीक़त को खोलेंगे, वे ग़ैर-अहल-ए-ईमान हो सकते हैं।

मिसाल के तौर पर साइंसी अंदाज़े के मुताबिक़ तक़रीबन 13.8 बिलियन साल पहले एक अज़ीम कायनाती धमाका हुआ। इस अज़ीम धमाके को 'बिग बैंग' कहा जाता है। बिग बैंग की डिस्कवरी सेकुलर अहल-ए-इल्म ने की है। उनके मुताबिक़ यह अज़ीम धमाका हमारी कायनात का आग़ाज़ था। ग़ालिबन यही कायनाती वाक़िआ है, जिसका क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में ज़िक्र किया गया है—

"أَوَلَمْ يَرَ الَّذِينَ كَفَرُوا أَنَّ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضَ كَانَتَا رَتْقًا فَفَتَقْنَاهُمَا"

"क्या इनकार करने वालों ने नहीं देखा कि आसमान और ज़मीन दोनों जुड़े हुए थे, फिर हमने उनको खोल दिया।"

(21:30)

इसका मतलब यह है कि ज़मीन-ओ-आसमान 'रतक़' की शक्ल में थे। 'रतक़' का मतलब है इंतिहाई शिद्दत के साथ बाहम जुड़े हुए होना (strongly joined together)। फिर अल्लाह ने उनका 'फ़त्क़' किया यानी यह तमाम अज्ज़ा एक-दूसरे से अलग-अलग कर दिए गए।

अब इससे ग़ाफ़िल होना मुजरिमाना फ़ेल होगा और यह भी कि जिन मसलों को लेकर सारी दुनिया के मुसलमान बड़े-बड़े मुज़ाहिरे कर रहे हैं, वे सब न सिर्फ़ बे-सूद, बल्कि ग़ैर-मुताल्लिक़ हैं। अब करने का सिर्फ़ एक काम है, वह यह है कि अल्लाह तआला ने हक़ की वज़ाहत का जो मौक़ा दिया है, उसे इस्तेमाल किया जाए।

दौर-ए-हाज़िर की तफ़्सीर

मौजूदा ज़माने में बहुत-से लोगों के बारे में समझा जाता है कि उन्होंने दौर-ए-हाज़िर के एतिबार से क़ुरआन की तफ़्सीर की है, मगर ये सब लोग सिर्फ़ 'दावा' की ज़बान में कलाम करते रहे हैं, हक़ीक़त से इसका कोई वास्ता नहीं। क़ुरआन में ख़ुद ऐसे इशारे मौजूद हैं, जो यह बताते हैं कि दौर-ए-हाज़िर की तफ़्सीर कैसे बयान की जाए। मसलन क़ुरआन की एक आयत इस बारे में पेशीनगोई की हैसियत रखती है। आयत यह है—

"سَنُرِيهِمْ آيَاتِنَا فِي الْآفَاقِ وَفِي أَنْفُسِهِمْ حَتَّى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ الْحَقُّ"

"अन-क़रीब हम उनको अपनी निशानियाँ दिखाएँगे, आफ़ाक़ में भी और ख़ुद उनके अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाएगा कि यह हक़ है।" (47:53)

इस आयत के मुताबिक़ 'आफ़ाक़-ओ-अन्फ़ुस' में आयात की दरियाफ़्त के बाद क़ुरआन की एक तफ़्सीर मुक़द्दर थी। इसी तरह क़ुरआन में ऐसे कुछ और भी इशारे मौजूद हैं, जिसके मुताबिक़ बाद के ज़माने में ऐसी कोई तफ़्सीर सामने आने वाली है, मगर मेरे इल्म के मुताबिक़ कोई ऐसी तफ़्सीर नहीं, जो इस मेयार पर फिट बैठती हो। कुछ लोगों ने यह दावा किया के साइंसी दरियाफ्तें क़ुरान की कुछ

आयतों को साबित करतीं हैं, लेकिन वे इस बात को नहीं बता पाए कि वे कैसे साबित करतीं हैं।

मुताले के ज़रिये एक बात वाज़ेह होती है कि मग़रिबी तहज़ीब ने एक नया इल्मी दौर पैदा किया है। यह साइंस पर मबनी दौर है। इस नए इल्मी दौर का वजूद बिला शुबा एक मानी हुई हक़ीक़त है। मसलन इस हक़ीक़त से कोई इनकार नहीं कर सकता है कि इससे पहले कोई ऐसा इल्मी दौर ज़ुहूर में नहीं आया, जिसने दुनिया को कंप्यूटर और हवाई जहाज़ जैसी चीज़ें दी हों। ऐसी हालत में यह एक मालूम हक़ीक़त है कि जिस मुफ़स्सिर ने इल्म-ए-जदीद का मुताला किया हो, वही वह आलिम हो सकता है, जो अस्र-ए-हाज़िर का मुफ़स्सिर-ए-क़ुरआन क़रार पाए। मेरे इल्म के मुताबिक़ बहुत-से लोग ऐसा गुमान करते हैं, लेकिन उनके पास कहने के लिए कुछ है तो वह सिर्फ़ दावे की ज़बान में है और सिर्फ़ दावे की ज़बान में किसी चीज़ को बयान कर देने से कोई बात साबित नहीं होती।

वाज़ेह तक़रीर या तहरीर

तक़रीर या तहरीर की एक ख़ास सिफ़त यह है कि इसमें वुज़ूह (clarity) हो। तजुर्बा बताता है कि लोगों की तक़रीर या तहरीर में जो चीज़ सबसे कम पाई जाती है, वह वुज़ूह है। ऐसे लोग बहुत मिलेंगे, जो ब-ज़ाहिर इल्मी तक़रीर या गुफ़्तुगू कर सकें, लेकिन ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिनकी गुफ़्तुगू और तक़रीर में वुज़ूह पाया जाए।

कलाम में वुज़ूह की एक शर्त है। वह यह कि लिखने या बोलने वाला मुताल्लिक़ (relevant) और ग़ैर-मुताल्लिक़ (irrelevant) का फ़र्क़ जानता हो। वह जब लिखे या बोले तो इससे पहले वह ख़ुद अपनी सोच में इस एतिबार से वुज़ूह पैदा कर चुका हो। जो आदमी

पेशगी तौर पर अपनी सोच में वुज़ूह पैदा कर ले, उसी के कलाम में वुज़ूह (clarity) की सिफ़त पाई जाएगी, वरना नहीं। मसलन आप तुर्की की उस्मानी ख़िलाफ़त के ख़ात्मे पर मज़मून लिखें और इसके ख़ात्मे का वाहिद सबब यह बताएँ कि कमाल अतातुर्क ने 1921 में फ़ौजी कमांडर बनने के बाद उस्मानी ख़िलाफ़त (Ottoman Empire) की मंसूख़ी का ऐलान कर दिया, मगर यह पूरी बात नहीं है। अस्ल यह है कि इसके ख़ात्मे (abolish) से पहले दुनिया में 'नेशन स्टेट' का तसव्वुर आ चुका था और इसके ज़ेर-ए-असर तुर्की ख़िलाफ़त के मातहत अरब मुल्कों में ताक़तवर अंदाज़ में अरब नेशनलिज़्म की तहरीक पैदा हो चुकी थी। इसके बाद जब 1922 में कमाल अतातुर्क (1881-1938) ने उस्मानी ख़िलाफ़त को ख़त्म किया तो दरअस्ल एक होने वाले वाक़िआ का ऐलान था, न कि ख़ुद होने वाले वाक़िए को वजूद में लाना। ऐसी हालत में लिखने या बोलने वाला आदमी अगर कमाल अतातुर्क के ज़रिये किए जाने वाले ख़िलाफ़त के ख़ात्मे को सिर्फ़ अतातुर्क की तरफ़ मंसूब करे, तो उसका कलाम ग़ैर-वाज़ेह होकर रह जाएगा।

कलाम में वुज़ूह नाम है इस बात का कि लिखने या बोलने वाला कलाम के मुताल्लिक़ चीज़ों और कलाम के ग़ैर-मुताल्लिक़ चीज़ों को एक-दूसरे से अलग करके अपनी बात कहे।

हिकमत का तरीक़ा

17 जून, 2019 को मिस्र के साबिक़ मुंतख़ब सदर डॉक्टर मुहम्मद मुर्सी का दिल की धड़कन बंद हो जाने से इंतिक़ाल हो गया। उनकी उम्र 67 साल थी। मीडिया के मुताबिक़ मुहम्मद मुर्सी एक मुक़दमे की वजह से अदालत के कमरे में मौजूद थे, जैसे ही अदालती कार्रवाई

ख़त्म हुई, वे बेहोश होकर गिर पड़े। उन्हें फ़ौरी तौर पर अस्पताल ले जाया गया और वे रास्ते ही में इंतिक़ाल कर गए।

डॉक्टर मुहम्मद मुर्सी 30 जून, 2012 को मिस्र के सदर मुंतख़ब हुए। फिर फ़ौज से उनका इख़्तिलाफ़ पैदा हुआ। 'स्काई न्यूज़ अरेबिया' की 26 जून, 2013 की रिपोर्ट के मुताबिक़ उन्होंने एक तक़रीर में ख़ुद यह कहा था –

"اصبتُ احياناً، و اخطاتُ احياناً اخریٰ"

"कभी मैंने दुरुस्त काम किया और कभी मैंने ग़लती की।"

यह तक़रीर यूट्यूब पर डॉक्टर मुहम्मद मुर्सी की अपनी आवाज़ में अरबी ज़बान में मौजूद है, जबकि वे सदारत की कुर्सी पर मौजूद थे। इसके बाद सदर मुहम्मद मुर्सी और उनके मुख़ालिफ़ीन के दरमियान टकराव के वाक़िआत पेश आए। इसका चरमबिंदु (culmination) इस तरह हुआ कि 3 जुलाई, 2013 को फ़ौज ने उनकी हुकूमत ख़त्म कर दी। उसके बाद डॉक्टर मुहम्मद मुर्सी के ख़िलाफ़ लंबे अर्से तक अदालत में मुक़द्दमा चलता रहा। इसी मुक़द्दमे की समाअत के दौरान अदालत में वे दिल के दौरे से इंतिक़ाल कर गए।

इस मामले में हिकमत का तक़ाज़ा है कि सबसे पहले यह दरियाफ़्त किया जाए कि वह ग़लती क्या थी, जो ख़ुद अपने एतिराफ़ के मुताबिक़ सदर डॉक्टर मुहम्मद मुर्सी से वाक़े हुई। इसलिए कि डॉक्टर मुर्सी डेमोक्रेटिक निज़ाम के सदर थे। डेमोक्रेसी में एक रूलिंग पार्टी होती है और दूसरी ओपॉज़िशन पार्टी। डेमोक्रेसी में ग़लती करना बेहद नाज़ुक (risky) होता है, क्योंकि ओपॉज़िशन पार्टी फ़ौरन उसे अपने हक़ में इस्तेमाल करती है। डेमोक्रेसी में ग़लती करना कोई सादा बात नहीं। डेमोक्रेसी में अगर हुकूमत का कोई फ़र्द ग़लती करे तो यह नामुमकिन होता है कि उसके अंजाम से वह अपने को

बचा सके। इसलिए डेमोक्रेसी में साहिब-ए-इक़्तिदार ग़लती करने के बाद अक्सर इस्तिफ़ा देकर हुकूमत से अलग हो जाता है। इस क़िस्म का इस्तिफ़ा गोया साहिब-ए-इक़्तिदार के लिए छोटी बुराई (lesser evil) को इख़्तियार करने के हम-मआनी होता है।

इस मामले में ग़लती का एतिराफ़ करने के बाद डॉक्टर मुर्सी को जो पहला काम करना था, वह यह था कि वे अपनी ग़लती के अंजाम से बचने की तदबीर करें। डेमोक्रेसी में इस तरह की ग़लती करने के बाद सिर्फ़ दूसरे को इल्ज़ाम देना काफ़ी नहीं होता, बल्कि यह ज़रूरी होता है कि ग़लती की नौइय्यत को समझा जाए और डेमोक्रेसी की रिवायात और क़ानूनी तक़ाज़े की रोशनी में इसका हल दरियाफ़्त किया जाए।

अब जबकि यह वाक़िआ हो चुका है तो डॉक्टर मुहम्मद मुर्सी के सपोर्टरों को यह काम अंजाम देना चाहिए। उनके लिए यह काफ़ी नहीं है कि वे फ़ौज को बुरा-भला कहें। अगर वे ऐसा करेंगे, तो वे यह दरियाफ़्त न कर पाएँगे कि ग़लती कहाँ हुई और डेमोक्रेसी या क़ानूनी निज़ाम के दायरे में इसका हल क्या है।

ख़ुदा के देश में

इंग्लैंड के एक साहब अपनी कार से स्विट्ज़रलैंड गए। उनके अपने मुल्क में 'बाएँ चलो' (left-hand drive) का ट्रैफ़िक रूल था, मगर वे इस दूसरे मुल्क में भी 'बाएँ चलो' के उसूल पर अपनी गाड़ी दौड़ा रहे थे, जबकि वहाँ 'दाएँ चलो' (right-hand drive) का उसूल लागू था। दूसरी साइड में कार चलाते देखकर वहाँ की ट्रैफ़िक पुलिस ने उन्हें रोका। कार का नंबर देखकर पुलिस-मैन समझ

गया कि यह आदमी किस मुल्क से आ रहा है। उसने मज़्कूरा शख़्स से कहा— "जनाब, आप इस वक़्त स्विट्ज़रलैंड में हैं, जहाँ 'दाएँ चलो' का उसूल है, न कि इंग्लैंड में, जहाँ 'बाएँ चलो' का उसूल है।"

यही मामला ज़्यादा बड़े पैमाने पर ख़ुदा के तख़्लीक़ी प्लान (Creation Plan) का है। ख़ुदा ने इंसान को पैदा किया है। इंसान पर लाज़िम है कि वह इस दुनिया में ख़ुदा के हुक्मों पर चले। जो लोग ऐसा न करें, वे ख़ुदा की दुनिया में ख़ुदा के उसूल की ख़िलाफ़-वर्ज़ी कर रहे हैं। ऐसे लोग क़यामत के दिन सज़ा के तौर पर अबदी कूड़ाख़ाने (Hell) के मुस्तहिक़ क़रार पाएँगे। कायनात का मुताला बताता है कि यह पूरे मअनों में एक ब-मअनी कायनात है। ऐसी एक ब-मअनी कायनात बे-मअनी अंजाम पर ख़त्म नहीं हो सकती। ज़रूरी है कि इस दुनिया का एक तख़्लीक़ी मंसूबा हो और इस तख़्लीक़ी मंसूबे के मुताबिक़ दुनिया का ख़ालिक़ उसके बारे में इंसाफ़ के साथ फ़ैसला करे।

डायरी 1986

1 जनवरी, 1986

आज जनाब दानियाल लतीफ़ी साहब एडवोकेट (पैदाइश:1917) हमारे दफ़्तर (निज़ामुद्दीन वेस्ट, नई दिल्ली) में आए। उनसे बहुत ही दिलचस्प क़ानूनी बातें मालूम हुईं। मसलन उन्होंने कहा कि कोई अच्छे से अच्छा वकील भी एक सच्चे गवाह को तोड़ नहीं सकता। शर्त यह है कि वह सिर्फ़ वही कहे, जो उसने देखा है। वह इस पर न एक लफ़्ज़ बढ़ाए और न एक लफ़्ज़ घटाए। इस सिलसिले में कुछ वाक़िआत भी उन्होंने बताए।

फिर उन्होंने एक लतीफ़ा बताया कि बर्तानिया कोर्ट ने एक मुजरिम के लिए सूली का फ़ैसला किया। इसके बारे में कोर्ट के अल्फ़ाज़ ये थे—

"He shall be hanged."

मजिस्ट्रेट ने फ़ैसला देखा तो उसने कहा कि मैं इसे सूली नहीं दे सकता, क्योंकि इसमें सिर्फ़ यह कहा गया है कि "इसे लटका दिया जाए," मगर यह नहीं बताया कि कैसे। अब मैं इसे सिर की तरफ़ से लटकाऊँ या पाँव की तरफ़ से। इस तरह के वाक़िआत मुख़्तलिफ़ मुल्कों की अदालतों में पेश आए। चुनाँचे क़ानून के अल्फ़ाज़ ज़्यादा मुकम्मल किए गए। दानियाल लतीफ़ी साहब से मैंने कहा कि इन अल्फ़ाज़ को लिख दीजिए।

दानियाल लतीफ़ी साहब को एक कैसेट, जिसका नाम 'जदीद इमकानात' था, दिया गया। आज शाम को उनका टेलीफ़ोन आया कि उन्होंने इस कैसेट को दोबार सुना। उन्हें यह कैसेट बहुत पसंद आया। इस बार उन्हें 'हल यहाँ है' पढ़ने के लिए दी गई है।

2 जनवरी, 1986

अल-मुतनब्बी (वफ़ात:965) अरबी ज़बान का एक नामवर शाइर है। इसके अशआर हिकमत और ज़िंदगी के उसूल के लिए मशहूर हैं। आज दिल्ली में एक बुज़ुर्ग से मुलाक़ात हुई। उनसे मैंने यह कहा कि ज़िंदा क़ौम के अफ़राद में एतिराफ़ (acceptance) की सिफ़त होती है और ज़वाल-याफ़्ता क़ौम के अफ़राद में एतिराफ़ की सिफ़त की कमी होती है। इस सिलसिले में मैंने कुछ मिसालें दीं। वे ख़ामोशी से सुनते रहे। उसके बाद उन्होंने मुतनब्बी नाम के शायर का एक शे'र पढ़ा, जो यह था –

"إِذَا أَنْتَ أَكْرَمْتَ الكَرِيْمَ مَلَكْتَهُ وَإِنْ أَنْتَ أَكرَمْتَ اللَّئِيْمَ تَمَرَّدَا"

"अगर तुम शरीफ़ को इज़्ज़त दो तो तुम उसे अपना ग़ुलाम बना लोगे। और अगर तुम कमीने आदमी को इज़्ज़त दो तो वह सरकशी करेगा।"

3 जनवरी, 1986

मिस्टर भीका राम (पैदाइश:1942) यू.पी. असेंबली में एम.एल.ए. हैं। वे आज सुबह हमारे दफ़्तर में आए। उनके हमराह उनके साथी नज़रुल इस्लाम साहब भी थे। उनसे बड़ी काम की बातें हुईं।

मिस्टर भीका राम ने कहा कि मेरे नज़दीक मज़हब की अस्ल तालीम यह है कि सब इंसान बराबर हों। हर क़िस्म की ऊँच-नीच ख़त्म हो और एक इंसान व दूसरे इंसान के दरमियान नफ़रत न रहे। उन्होंने कहा कि इस्लाम की तालीम यही है और अगर इस मुल्क में सच्चा इस्लाम पेश किया गया होता तो आज हमारा मुल्क मुसलमान होता। यहाँ वे सब झगड़े मौजूद ही न होते, जो अब दिखाई दे रहे हैं। वे हिंदी ज़बान में इस्लाम का मज़ीद मुताला करना चाहते थे। मैंने उन्हें 'इंसान अपने आपको पहचान' का हिंदी तर्जुमा बतौर तोहफ़ा दिया।

मैंने मिस्टर भीका राम से मज़ीद पूछा कि अपना कोई ख़ास तजुर्बा बताइए। उन्होंने कहा कि लालच और ज़ाती फ़ायदे को छोड़कर सभी लोगों के बारे में सोचना, सबके फ़ायदे को सामने रखकर सोचना यही कामयाबी का राज़ है। आप लालच को छोड़ दें, तभी आप कामयाब हो सकते हैं।

4 जनवरी, 1986

एक मुसलमान लीडर दिल्ली आए और मुझसे मिले। उनके पास अंग्रेज़ी ज़बान में तैयारशुदा एक मेमोरेंडम था। उसकी एक नक़्ल उन्होंने मुझे दी। यह मेमोरेंडम वे वज़ीर-ए-आज़म की ख़िदमत में पेश करना चाहते थे। इस मेमोरेंडम में मुसलमानों की मुआशी पिछड़ेपन

(financial backwardness) का तज़्किरा था। इसके बाद हुकूमत से मुतालबा किया गया था कि मुसलमान चूँकि मुआशी दौड़ में मुल्क के मेजोरिटी फ़िरक़े से पीछे हो गए हैं, इसलिए मुसलमानों को उस वक़्त तक ख़ुसूसी रिआयत दी जाए, जब तक कि वे मआश के मैदान में मेजोरिटी फ़िरक़े के बराबर न हो जाएँ।

मज़्कूरा लीडर साहब को मैं पहले से जानता था। मुझे मालूम है कि उनका अपना बिज़नेस है और उनके पास किराए के मकानात हैं। इन सबसे उन्हें (1986 में) कम-से-कम दस हज़ार रुपये माहवार आमदनी होती है। जबकि उन्हीं लीडर साहब के एक सगे भाई हैं, जो महीने में मुश्किल से पाँच सौ रुपये कमाते होंगे। मैंने लीडर साहब से कहा कि आपके फ़ुलाँ सगे भाई पैसों के एतिबार से आपसे पीछे हो गए हैं, इसलिए आप ऐसा करें कि अपनी आमदनी का आधा हिस्सा हर माह अपने भाई को देते रहें, यहाँ तक कि वह पैसों के एतिबार से आपके बराबर हो जाएँ।

यह सुनकर लीडर साहिब हँसने लगे। उनकी हँसी को देखकर मेरा दिल तड़प उठा। मैंने कहा कि आप पर तअज्जुब है कि जो रिआयत आप अपने सगे भाई के साथ नहीं कर सकते हैं, जो कि मुसलमान भी है, उसी रिआयत का मुतालबा आप मुसलमानों के लिए एक नॉन-मुस्लिम वज़ीर-ए-आज़म से करने जा रहे हैं।

हमारी मुस्लिम क़ियादत आज सबसे ज़्यादा जिस चीज़ से बे-ख़बर है, वह यह है कि मौजूदा दुनिया रिआयतों की दुनिया नहीं, बल्कि मुक़ाबले की दुनिया है। रिआयतों को तलाश करने वाला इस दुनिया में अपने लिए कुछ नहीं पा सकता। हमें चाहिए कि मुसलमानों को मज़्कूरा क़िस्म के झूठे नारों में न उलझाएँ, बल्कि उन्हें साफ़ तौर पर बताएँ कि तुम मुक़ाबले की दुनिया में हो। यहाँ तुम क़ाबिलियत

का सबूत देकर पा सकते हो। अगर तुम अहलियत का सबूत न दे सको तो यहाँ तुम्हें कुछ भी मिलने वाला नहीं।

5 जनवरी, 1986

शाह वासिफ़ इमाम साहब (पटना) अपने किसी काम से दिल्ली आए थे। वे आज मुझसे मिलने के लिए हमारे मरकज़, निज़ामुद्दीन वेस्ट, दिल्ली में आए। वे दो साल से 'अल-रिसाला' पढ़ रहे हैं और उर्दू व अंग्रेज़ी दोनों रिसालों की एजेंसी भी चला रहे हैं। उन्हें मैंने दो किताबें हदिय्यतन दीं— 'हक़ीक़त की तलाश' और 'हल यहाँ है'।

उनसे मैंने पूछा कि 'अल-रिसाला' से आपको क्या मिला? उन्होंने इसके जवाब में जो कुछ कहा, वह उन्हीं के अल्फ़ाज़ में यह था— "अल-रिसाला के मुताले से पहले मैं किसी शहर को देखकर उसके बनाने वाले इंसानों की अज़्मत में गुम हो जाता था, लेकिन 'अल-रिसाला' के मुताले के बाद यह हाल है कि मैं शहर बनाने वाले इंसानों के ख़ालिक़ की अज़्मत में गुम रहता हूँ। मैं सोचने लगता हूँ कि वह ख़ुदा भी कैसा अज़ीम है, जिसने इंसान को यह सलाहियत दी।" उन्होंने मज़ीद कहा, "पहले मैं समझता था कि मैं शाह वासिफ़ इमाम हूँ। अब मैं समझता हूँ कि मैं रब का बंदा हूँ।"

यह अल्लाह का ख़ास फ़ज़्ल है कि आज हज़ारों लोग हैं, जिनके अंदर 'अल-रिसाला' पढ़ने के बाद इस क़िस्म का ज़ेहन बना है। अल्लाह तआला 'अल-रिसाला' की आवाज़ को मज़ीद फैलाए और इसे दुनिया की हर ज़बान में पहुँचाने का इंतिज़ाम फ़रमाए।

तक़रीबन रोज़ाना ऐसे ख़ुतूत आते हैं या ऐसे अफ़राद से मुलाक़ात होती है, जो इस क़िस्म के तास्सुरात का इज़हार करते हैं। मुसलमानों के लीडरों ने अगरचे अभी 'अल-रिसाला' की आवाज़ को अहमियत नहीं दी है, मगर आम मुसलमानों में 'अल-रिसाला'

की आवाज़ बहुत बड़े पैमाने पर फैली है और रोज़ाना फैल रही है। ताहम इसमें हैरत की कोई बात नहीं। हक़ की ख़ालिस दावत के साथ हमेशा यही सूरत-ए-हाल पेश आई है।

6 जनवरी, 1986

एक मुसलमान बुज़ुर्ग मुलाक़ात के लिए तशरीफ़ लाए। उन्होंने बैठते ही कहा, "मुतल्लक़ा औरत के ज़रूरी अख़राजात के सिलसिले में हिंदुस्तान की अदालत ने जो फ़ैसला दिया है, वह शरीअत में ज़ाहिराना मदाख़लत है। आप उसके ख़िलाफ़ क्यों नहीं लिखते?" मौसूफ़ की मुराद शाह बानो बेग़म और मुहम्मद अहमद इंदौरी के मुक़द्दमे से थी।

मैंने कहा कि आप सबसे पहले अपने जुमले को सही कीजिए। यह जुमला मेरे नज़दीक सही नहीं। अस्ल बात जो हुई है, वह यह है कि एक मुसलमान ख़ातून (शाह बानो बेग़म) हिंदुस्तानी अदालत में गईं। उन्होंने दावा किया कि मुझे फ़ुलाँ मुल्की क़ानून के तहत मेरे शौहर से गुज़ारा (maintenance) दिलवाया जाए। अदालत ने मामले की तफ़्सीली सुनवाई के बाद मुसलमान ख़ातून के दावे को तस्लीम किया और ख़ातून के अपने मुतालिबे के मुताबिक़ फ़ैसला दिया कि उनके शौहर उन्हें 180 रुपये माहवार अदा करें।

इसे आप अदालत की ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं कह सकते, क्योंकि ज़ोर-ज़बरदस्ती करने वाला वह होता है, जो शुरुआत करे। इस मामले में अदालत ने अपनी तरफ़ से कोई कदम नहीं उठाया और न ही वह कोई कदम उठा सकती थी। इस मामले में अगर ज़्यादती हुई है तो वह सरासर मुस्लिम ख़ातून की तरफ़ से हुई है। यह मुस्लिम ख़ातून थीं, जिन्होंने ख़ुद अदालत में जाकर मुक़द्दमा पेश किया और अदालत से कहा कि वह उन्हें मुल्की क़ानून के तहत मज़्कूरा रक़म दिलवाए।

हक़ीक़त यह है कि इस मामले में अदालत को जाबिर क़रार देना अपनी ग़लती को दूसरे के ऊपर डालना है। अगर आपको इस्लाम की फ़िक्र है, तो आप मुस्लिम मर्दों और मुस्लिम औरतों की इस्लाह कीजिए। उनके अंदर यह ज़ेहन बनाइए कि वे अपने ज़ाती झगड़ों को अदालत में न ले जाएँ, बल्कि किसी को सालिस (mediator) बनाकर आपस में बैठकर सुलझाएँ। मदीना के मुनाफ़िक़ीन अपने झगड़े यहूदियों की अदालत में ले जाते थे तो क़ुरआन ने ख़ुद मुनाफ़िक़ीन को मुल्ज़िम ठहराया, न कि यहूदी अदालत को। (4:60)

7 जनवरी, 1986

पाकिस्तान के एक साहब मुलाक़ात के लिए तशरीफ़ लाए। वे एक इदारा 'मकतबा इस्हाक़िया (कराची) के मालिक हैं। उन्होंने बताया कि मैंने इंडियन एयरलाइंस में सफ़र किया। मैंने देखा कि पाकिस्तानी लोग खुलकर जहाज़ के अंदर शराब ख़रीद रहे हैं। हालाँकि पाकिस्तान में शराब पर पाबंदी है।

यही हाल उन तमाम मुस्लिम मुल्कों का है, जहाँ 'इस्लामाइज़ेशन' की नाम-वास्ता तहरीकें चल रही हैं, जो कि उसकी रूह से ख़ाली हैं। काग़ज़ पर और तक़रीरों में इस्लाम की धूम है, मगर अमलन पूरा मुआशरा इस्लाम के ख़िलाफ़ चल रहा है। हक़ीक़त यह है कि जब तक मुआशरे के अफ़राद तैयार न हो जाएँ, इस्लामी क़ानून को लागू करना एक बे-नतीजा काम है। हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा की हदीस के मुताबिक़, इस्लामी काम का आग़ाज़ दिल-ओ-दिमाग़ पर इस्लाम के लागू करने से होता है (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 4993), न कि हुकूमत और पार्लियामेंट के ज़रिये क़ानून बनाकर उसे ज़ोर-ज़बरदस्ती लागू करने से।

8 जनवरी, 1986

एक साहब मिलने के लिए आए। उन्होंने बताया कि हमारे यहाँ एक आलिम आए थे। उन्होंने सूरह 'अल-अस्र' की तफ़्सीर बयान की। इसमें उन्होंने कहा कि अल्लाह ने इस सूरह में यह फ़रमाया है—

> "ऐ नबी! लोगों को बता दो कि मेरे पास जो कुछ था, वह मैंने मुहम्मद को दे दिया। अब जिसे लेना है, वह तुम्हारे पास आकर ले। मेरे पास अब कुछ नहीं।"

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि मुसलमानों ने ख़ुदा की किताब में क्या-क्या बदलाव किए हैं। वे क़ुरआन के 'मतन' (text) में तो कोई इज़ाफ़ा न कर सके, मगर उन्होंने क़ुरआन की तफ़्सीर में वह सब कुछ लिख दिया, जो पिछली उम्मतों ने 'मतन' में लिखा था।

मुसलमानों ने अगर क़ुरआन के मतन में कोई बदलाव नहीं किया तो इसका उन्हें कोई इनाम मिलने वाला नहीं, क्योंकि मतन में बदलाव करने से तो उनके हाथ बँधे हुए थे। फिर वे मतन में बदलाव करते तो कैसे करते? वे सिर्फ़ तफ़्सीर में बदलाव कर सकते थे और यह काम उन्होंने उतने ही बड़े पैमाने पर किया है, जितना पिछली क़ौमों ने इससे पहले मतन में किया था।

9 जनवरी, 1986

एक मुसलमान बुज़ुर्ग ने एक हिंदी किताब का ज़िक्र किया, जो बच्चों के सिलेबस में दाख़िल है। उन्होंने बताया कि इसमें तुग़लक़ बादशाह पर एक मज़मून है। इस मज़मून में यह अल्फ़ाज़ हैं—

> "तुग़लक़ था तो मुसलमान, मगर था बड़ा दयालु!"

मज़्कूरा मुसलमान बुज़ुर्ग ने शिकायत की कि किताब में इस तरह की बातें शामिल करके निहायत मंसूबा-बंद तरीक़े से बच्चों का ज़ेहन बिगाड़ा जा रहा है कि मुसलमान वहशी और ख़ूँख़ार होते हैं।

मैंने कहा कि इसकी ज़िम्मेदारी उन लोगों पर नहीं, बल्कि ख़ुद मुस्लिम क़ौम पर है। मुसलमानों ने अपनी यही तस्वीर बनाई है, तो दूसरे लोग इसके सिवा मुसलमानों को और क्या समझें? मैंने कहा कि आपके एक बड़े मिल्ली शाइर ने फ़ख़्र के साथ कहा है—

"तेग़ों (तलवार) के साए में हम पलकर जवाँ हुए हैं,
ख़ंजर हिलाल (नया चाँद) का है क़ौमी निशान हमारा।"

फिर जब ख़ुद आपका नुमाइंदा यही कह रहा हो तो दूसरे लोग इसके सिवा कुछ और कैसे कह सकते हैं? एक और साहब उनके साथ थे। उन्होंने कहा कि अंग्रेज़ इतिहासकारों ने निहायत होशियारी के साथ ज़हनों को बिगाड़ा है। मसलन हिंदुस्तान की एक अंग्रेज़ी तारीख़ में तीन दौर के लिए इस तरह से मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ लिखे गए हैं—

Advent of Aryans (आर्यों की आमद)
Invasion of Muslims (मुसलमानों का हमला)
Influence of the British (बर्तानिया के असरात)

10 जनवरी, 1986

कहा जाता है कि ख़ुदा के 99 नाम हैं। लोग इन नामों को याद करके उनका विर्द करते हैं, मगर ये नाम महज़ नाम नहीं, बल्कि दरअस्ल ख़ुदा की सिफ़तें हैं। ख़ुदा एक है, इसलिए उसका नाम भी हक़ीक़तन एक है, मगर उसकी सिफ़तें बेशुमार हैं। एक हदीस-ए-रसूल के मुताबिक़, अल्लाह के 99 से ज़्यादा नाम हैं।

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 3712)

मेरा अपने बारे में ख़याल है कि मैंने ख़ुदा की बाज़ ऐसी सिफ़तें दरियाफ़्त की हैं, जो मेरी अपनी खोज हैं, जिन्हें मैंने इससे पहले किताबों में नहीं पढ़ा था।

मसलन में एक बार मैं फैली हुई कायनात के बारे में सोच रहा था। अचानक मुझे महसूस हुआ कि मैं ख़ुदा की एक नई सिफ़त की खोज कर रहा हूँ। इस सिफ़त को 'सेल्फ कॉन्फिडेंस' (self-confidence) कह सकते हैं यानी ख़ुद-एतिमादी। कायनात में इतने बेशुमार पिंड (astronomical bodies) को बनाना और उनको हमेशा हरकत में रखना एक बेहद नाज़ुक काम था। ख़ुदा ने इतनी बड़ी कायनात बनाई और दूसरी तरफ़ इंसान को आँख दे दी कि वह देखे कि क्या वह इस निज़ाम में कोई कमी (mismanagement) पाता है? ग़ैर-मामूली सेल्फ कॉन्फिडेंस के बग़ैर इतना बड़ा इक़्दाम नहीं किया जा सकता।

इसी तरह मैंने एक रोज़ ख़ुदा की एक और सिफ़त की दरयाफ़्त की और वह है परफेक्शनिस्ट होने के बावजूद इम्परफेक्शन से डिस्टर्ब न होना।

मेरा अपना यह ख़याल है कि मुझे धुएँ से चक्कर आ जाता है। शोर से मेरा ज़ेहन भटक जाता है। गंदगी का देखना मैं बर्दाश्त नहीं कर पाता। इसलिए मौजूदा दुनिया मुझे ख़ौफ़नाक चीज़ जैसी लगने लगी है, मगर ख़ुदा पूरे इख़्तियार के बावजूद इंसानों की तमाम ख़ुराफ़ात को गवारा किए हुए है। ख़ुदा बहुत ज़्यादा मेयार-पसंद (ideal) होने के बावजूद मुसलसल तौर पर ग़ैर-मेयारी चीज़ को देखता है और वह डिस्टर्ब नहीं होता। कैसा अजीब क़ुदरत वाला है ख़ुदा!

11 जनवरी, 1986

एक साहब से मुलाक़ात हुई। उन्हें 'अल-रिसाला' के बारे में यह शिकायत थी कि इसमें मुसलमानों पर तनक़ीद (criticism) होती है। उन्होंने कहा कि मुसलमानों पर तनक़ीद करना ग़ैर-लोगों को ख़ुश

होने का मौक़ा देना है। इसलिए उनका मशवरा था कि मुसलमानों पर खुली तनक़ीद न की जाए। मैंने कहा कि यह बात जो आप फ़रमा रहे हैं, कोई सादा-सी बात नहीं है। यह वही चीज़ है, जिसे क़ौम-परस्ती कहा जाता है। यह उसूली मामले में हस्सास (sensitive) होने के बजाय क़ौमी मामले में हस्सास होना है। हक़ीक़त को नुक़सान पहुँचने से आप नहीं तड़पते। अलबत्ता क़ौमी फ़ख़्र को ठेस पहुँचे तो आप तड़प उठते हैं। मुझे अफ़सोस है कि मैं आपके इस मशवरे को क़ुबूल नहीं कर सकता।

12 जनवरी, 1986

तब्लीग़ी जमात के एक साहब से मुलाक़ात हुई। उन्होंने एक आलिम से अपनी गुफ़्तुगू नक़्ल की। मज़्कूरा आलिम ने उनसे यह शिकायत की कि तब्लीग़ी जमात के लोग जिहाद को छोड़े हुए हैं।

उन्होंने जवाब दिया कि हमने जिहाद को नहीं छोड़ा है, अलबत्ता क़िताल (जंग) से हम अलग रहते हैं। आपने ख़ुद किताब 'नूर-उल-अनवार' (जिल्द 1, सफ़्हा 170-172) में हमें यह पढ़ाया है कि—

> "जिहाद 'हसन-ए-लिज़ातिही' है, क़िताल 'हसन-ए-लिग़ैरिही' है।"

इसका मतलब यह है कि दीन में असलन जो चीज़ मतलूब है, वह जिहाद है, न कि क़िताल, चुनाँचे दावत का जो काम हम कर रहे हैं, वह ऐन जिहाद है, अगरचे वह क़िताल नहीं। फिर आपको हमारे ऊपर क्या एतिराज़ है?

13 जनवरी, 1986

पिछली डायरी देख रहा था। इसमें 2 नवंबर, 1979 की तारीख़ के साथ नीचे दी गई तहरीर मिली। यह मैंने 'जमीयत बिल्डिंग' (पुरानी दिल्ली) में लिखी थी।

आज मौलाना मुहम्मद शुऐब कोटि और मिस्टर ग़ुलाम नबी शाहीन कश्मीरी से गुफ़्तुगू हुई। ये दोनों जमात-ए-इस्लामी की सियासी फ़िक्र से इत्तिफ़ाक़ रखते थे। मैंने कहा कि इस वक़्त ज़ाहिर तौर पर लोगों को दिखाई दे रहा है कि मुस्लिम दुनिया में जमात-ए-इस्लामी और इख़्वान-उल-मुस्लिमीन की फ़िक्र ग़ालिब है, मगर बहुत जल्द वह वक़्त आने वाला है, जबकि यह फ़िक्र कमज़ोर पड़ जाएगी और 'अल-रिसाला' की फ़िक्र मुस्लिम दुनिया में ग़ालिब फ़िक्र की हैसियत हासिल कर लेगी। आप लोगों को आज मेरी यह बात बहुत अजीब मालूम होगी, मगर इंशा अल्लाह! आप लोग यह देखने के लिए ज़िंदा रहेंगे। अगरचे मैं शायद उस वक़्त मर चुका होऊँगा।

फिर मैंने कहा कि जमात-ए-इस्लामी की जो फ़िक्र है, उसके अंदर सिर्फ़ वक़्ती क़द्र (value) है, उसमें मुस्तक़िल क़द्र नहीं। उन्नीसवीं सदी की दुनिया में जो सियासी फ़िक्र उठी और मुस्लिम मुल्कों में यूरोपियन ताक़तों के ग़लबों के नतीजे में जो रद्द-ए-अमल पैदा हुआ, उसके माहौल में जमात-ए-इस्लामी और इख़्वान-उल-मुस्लिमीन की फ़िक्र बनी। यह फ़िक्र ख़ास सियासी हालात की पैदावार है, न कि हक़ीक़तन इस्लाम की पैदावार। चुनाँचे उन्होंने इस्लाम को सियासी इंक़िलाब की सूरत में पेश कर दिया।

इस्लाम की सियासी ताबीर बुनियादी तौर पर अपने ज़माने के सियासी हालात का रद्द-ए-अमल है और यह ज़माना तेज़ी से ख़त्म हो रहा है। आज का इंसान फ़ितरत की ज़मीन पर खड़ा होना चाहता है। इस्लाम की सियासी ताबीर की सारी अहमियत सियासी हालात की ज़मीन पर है। आने वाला इंसान जो फ़ितरत की ज़मीन पर खड़ा रहना चाहेगा, उसके लिए फ़िक्री तस्कीन सिर्फ़ 'अल-रिसाला' के पैग़ाम में होगी और इस वक़्त के आने में शायद दस साल से ज़्यादा नहीं लगेंगे।

14 जनवरी, 1986

अक्सर ऐसा होता है कि मुझ पर बाज़ लम्हाती तजुर्बे गुज़रते हैं। ये तजुर्बे इंतिहाई मज़ेदार और इंतिहाई हद तक नाक़ाबिल-ए-बयान होते हैं। उनको लफ़्ज़ों में बयान किया जा सकता है, मगर ये अल्फ़ाज़ सिर्फ़ अस्ल तजुर्बे की अलामत होंगे, न कि अस्ल तजुर्बे का बयान। मसलन मेरी पिछले डायरी में 22 मार्च, 1980 की तारीख़ के साथ एक तजुर्बा इन अल्फ़ाज़ में लिखा हुआ है—

> "आज मैं अपनी किताब 'अज़्मत-ए-क़ुरआन' का दीबाचा लिख रहा था। अचानक मुझ पर एक लम्हाती तजुर्बा गुज़रा। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं इसे लिख रहा हूँ और ख़ुदा की ख़ास मदद आ रही है। इसे हदीस में 'सकीनत' कहा गया है।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3614)

इसी तरह अक्सर ऐसा होता है कि मेरे अंदर का ग़म कुछ अल्फ़ाज़ की सूरत में टपक पड़ता है। यह सारा अमल बिलकुल बे-इख़्तियाराना होता है यानी मैं सोच समझकर ये अल्फ़ाज़ नहीं बोलता, बल्कि ये अल्फ़ाज़ अपने आप एक बेहद दर्द-अंगेज़ कैफ़ियत के साथ ज़बान पर आ जाते हैं। मसलन एक मर्तबा ये जुमला मेरी ज़बान पर आ गया—

"लोग जन्नत का नाम लेते हैं। हालाँकि उनके आमाल बताते हैं कि उन्हें जन्नत से कोई दिलचस्पी नहीं।"

22 फ़रवरी, 1985 का एक लम्हाती तजुर्बा मेरी डायरी में इन अल्फ़ाज़ में लिखा हुआ है—

"आज दिन में एक अजीब तजुर्बा गुज़रा। मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे मैं हर घड़ी ख़त्म हो रहा हूँ और हर घड़ी दोबारा ज़िंदा हो रहा हूँ। जैसे कि हर घड़ी मैं अपने मौजूदा लम्हें में ख़त्म हो रहा हूँ और हर घड़ी अपने अगले लम्हे में दोबारा मौजूद हो रहा हूँ।"

15 जनवरी, 1986

एक बुज़ुर्ग ने क़ुरआन की तफ़्सीर लिखी। इसके बाद उन्होंने यह शेर कहा—

”روز قیامت ہر کسے با خویش دارد نا مۂ
من نیز حاضر می شوم تفسیرقرآں در بغل“

एक मारूफ़ आलिम-ए-दीन ने अपनी सीरत की किताब के दीबाचा में लिखा है—

“…सबसे बढ़कर यह कि वह (किताब) ख़ुदा के यहाँ क़ुबूल और लिखने वाले के लिए ज़रिया-ए-मग़फ़िरत और वसीला-ए-शफ़ाअत हो तो वह समझेगा कि उसकी मेहनत ठिकाने लगी और उसी को यह कहने का हक़ होगा—

”شادم از زندگی خویش کہ کارے کردم“

मैं अपनी ज़िंदगी से ख़ुश हूँ कि कोई काम किया।”

मेरा मिज़ाज इस मामले में सरासर मुख़्तलिफ़ है। मेरे ज़ेहन में कभी भी यह ख़याल नहीं आता कि क़यामत के दिन जब ख़ुदा पूछेगा कि तू क्या लाया तो मैं कह दूँगा कि फ़ुलाँ किताब लिखकर लाया हूँ।

इस क़िस्म की बातें मुझे ख़ुदा का कमतर अंदाज़ा (underestimation) मालूम होती है। ख़ुदा इससे बहुत बरतर है कि उसके यहाँ हम अपनी किताब पेश करें। दरख़्त की एक पत्ती भी इंसानों की लिखी हुई तमाम किताबों से ज़्यादा अज़ीम है। इसी तरह आख़िरत की ख़त्म न होने वाली नेमतें इससे बहुत ज़्यादा हैं कि कोई मिट जाने वाले अमल उसकी क़ीमत दिला सकें।

मेरी ज़बान से तो जब भी दुआ निकलती है, यही निकलती है कि ख़ुदाया! मेरे पास कुछ भी नहीं। मैं अक्सर यह दुआ करता हूँ

कि ख़ुदाया! मेरे नामा-ए-आमाल से मेरे तमाम कामों को हज़्फ़ कर दे और सिर्फ़ अपनी रहमत को इसमें लिख दे। हक़ीक़त यह है कि अल्लाह की रहमत के सिवा और कोई चीज़ नहीं, जो आदमी को नजात देने वाली हो।

16 जनवरी, 1986

मौलाना रूमी का शेर है—

"دین حق را چار مذہب ساختند/رخنہ در دین نبی انداختند"

"ख़ुदा के सच्चे दीन को लोगों ने चार अलग दीन बना दिया
और इस तरह पैग़ंबर के दीन में दरार डाल दी।"

इसी तरह के अशआर इक़बाल के यहाँ भी कसरत से पाए जाते हैं। मसलन उनका यह शेर—

"हक़ीक़त ख़ुराफ़ात में खो गई,
ये उम्मत रिवायात में खो गई।"

इस तरह की सख़्त बातों के बावजूद मुसलमान के यहाँ रूमी और इक़बाल बहुत ज़्यादा मक़बूल हैं।

इसके मुक़ाबले में मैने अपनी किताब 'तज्दीद-ए-दीन' और कुछ दूसरी तहरीरों में इस तरह की बातें कहीं तो मुसलमान बेहद ख़फ़ा हो गए।

इस फ़र्क़ की वजह क्या है? इसकी वजह यह है कि रूमी और इक़बाल इस बात को शेर की ज़बान में कहते हैं और मैं इसे इल्मी तजज़िया (scientific analysis) की ज़बान में कहता हूँ। शेर के उस्लूब में कोई बात साबित नहीं होती। शेर से कोई बात न तो ग़लत साबित होती है और न सही। वह तो सिर्फ़ अल्फ़ाज़ की ख़ूबसूरत तरतीब होती है।

इसके बर-अक्स मेरे तजज़ियाती (analytical) मज़ामीन इन बातों को साबितशुदा हक़ीक़त बना रहे हैं। इसमें सही बिल्कुल सही हो जाता है और ग़लत बिल्कुल ग़लत। यही वजह है कि लोग उन्हें पढ़कर नाराज़ हो जाते हैं। रूमी और इक़बाल के अशआर को गुनगुनाने से उनके ख़ुद-साख़्ता अक़ीदे कमज़ोर नहीं होते। जबकि मेरे मज़ामीन पढ़कर उन्हें महसूस होता है कि उनके ख़ुद-साख़्ता अक़ीदे की दीवार ढह रही है। यही वजह है कि उनके यहाँ रूमी और इक़बाल पसंद किए जाते हैं और ठीक उसी क़िस्म की बात मैं कहता हूँ तो मुझसे नाराज़ हो जाते हैं।

17 जनवरी, 1986

दौर-ए-जदीद में मुसलमान सबसे ज़्यादा पिछड़ी हुई क़ौम हैं। हक़ीक़त यह है कि अगर पेट्रो डॉलर की ताक़त ज़ाहिर न हुई होती तो आज मुसलमान एक क़िस्म के इंटरनेशनल अछूत बन चुके होते।

इसकी सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदारी लीडरों पर है। 19वीं सदी में जब मग़रिबी क़ौमों ने मुस्लिम क़ुव्वतों पर ग़लबा हासिल किया तो मुसलमानों ने इस एतिबार से कुछ भी न सोचा कि आख़िर वह कौन-सी ताक़त है, जिस बिना पर मग़रिबी क़ौमें दुनिया पर छा गई हैं। मुस्लिम लीडर नफ़रत और नेगेटिव रद्द-ए-अमल के सिवा उस वक़्त किसी और चीज़ का सबूत न दे सके।

इस ज़माने में ऐसे शायर और तक़रीर करने वाले पैदा हुए, जिनकी मक़बूलियत का सबसे बड़ा राज़ यह था कि वे मग़रिब और मग़रिबी तहज़ीब का मज़ाक़ उड़ाते हैं। इसी में एक मिसाल अकबर इलाहाबादी (1846-1921) की है। उनके अशआर की कसीर तादाद ऐसी है, जो मग़रिब से नफ़रत और हँसी उड़ाने पर मबनी है, हत्ता

कि उन्होंने मग़ारिब की इंतिहाई मुफ़ीद चीज़ों का भी मज़ाक़ उड़ाया। मसलन उनका एक शेर है—

"हर्फ़ पढ़ना पड़ा है टाइप का,
पानी पीना पड़ा है पाइप का।"

इसी तरह उनका एक शेर है—

"बच्चों के कभी क़त्ल से बदनाम न होता,
अफ़सोस कि फ़िरऔन को कॉलेज की न सूझी।"

इसी क़िस्म की मनफ़ी बातें थीं, जिन्होंने मुसलमानों को जदीद तालीम से दो सौ साल दूर कर दिया। वे मग़ारिब की हर चीज़ को नफ़रत की नज़र से देखते रहे, यहाँ तक कि वे जागे तो उस वक़्त जागे, जबकि दुनिया उनसे बहुत आगे जा चुकी थी। एक फ़ारसी शाइर के अल्फ़ाज़ में—

"यक लहजा ग़ाफ़िल गुशतम-ओ-सद साला राहम दूर शद।"

"मैं एक लम्हे के लिए ग़ाफ़िल हुआ और राह से सौ साल दूर हो गया।"

आग़ाज़ के बग़ैर

इस दुनिया का एक फ़ितरी क़ानून यह है कि यहाँ इब्तिदाई तैयारियों के बग़ैर आगे का काम नहीं किया जा सकता। इब्तिदाई तैयारी की हक़ीक़त को नोबेल-इनाम-याफ़्ता मशहूर अंग्रेज़ी साहित्यकार और फ़िलॉसफ़र जॉर्ज बर्नार्ड शॉ (वफ़ात:1950) के क़ौल से समझा जा सकता है। उसने सोलहवीं सदी के अंग्रेज़ मुसन्निफ़ और शाइर विलियम शेक्सपियर से अपना मुक़ाबला करते हुए कहा है—

"मेरा क़द शेक्सपियर से बहुत छोटा है, मगर मैं उसके कंधे पर खड़ा हुआ हूँ।"

"He was much taller than me, but I stand on his shoulders."
(George Bernard Shaw, by Gilbert K. Chesterton, 1909 Edition)

बर्नार्ड शॉ विलियम शेक्सपियर (वफ़ात:1616) के तक़रीबन ढाई सौ साल बाद 1856 में पैदा हुआ। शेक्सपियर ने अपने ज़माने में अंग्रेज़ी ज़बान को जहाँ पाया था, उस पर उसने अपनी कोशिशों से मज़ीद इज़ाफ़ा किया, हत्ता कि इसे तरक़्क़ी के एक नए मरहले में पहुँचा दिया। शेक्सपियर के बाद सैकड़ों साहित्यकार पैदा हुए, जो इसे मज़ीद आगे बढ़ाते रहे, यहाँ तक कि अंग्रेज़ी ज़बान उस आला तरक़्क़ी-याफ़्ता मरहले तक पहुँच गई, जहाँ से बर्नार्ड शॉ को मौक़ा मिला कि वह अपने क़लमी सफ़र का आग़ाज़ कर सके।

अगर पिछले लोगों ने बर्नार्ड शॉ के लिए आग़ाज़ फ़राहम न किया होता तो बर्नार्ड शॉ के लिए नामुमकिन था कि वह साहित्य को तरक़्क़ी के इस बुलंद मक़ाम पर पहुँचे, जहाँ वह उनकी कोशिशों से पहुँचा। यही फ़ितरी उसूल ज़िंदगी के तमाम मामलात में जारी है। जब क़ौम के पिछले लोग इब्तिदाई मंज़िलें तय कर चुके हों, उसी वक़्त यह मुमकिन होता है कि क़ौम के बाद के लोग आगे की मंज़िलों पर अपना सफ़र जारी करें।

अगर पिछले लोगों ने अपने हिस्से का काम न किया हो तो बाद वालों को सबसे पहले इब्तिदाई तैयारी का काम करना पड़ेगा, क्योंकि क़ानून-ए-फ़ितरत के मुताबिक़ सफ़र हमेशा वहाँ से शुरू होता

है, जहाँ से आपको आग़ाज़ करना है; न कि वहाँ से, जहाँ आप पहुँचना चाहते हैं। जिस मकान की ज़मीनी बुनियादें और दीवारें अभी तैयार न हुई हों, उस मकान की छत और ऊपरी मंज़िलें किस चीज़ के ऊपर खड़ी की जाएँगी?

इस्लाम का फ़िक्री इंक़िलाब दूसरी फ़िक्रों पर आज भी ग़ालिब है

"मुसलमान तसादुम और टकराव का रास्ता तर्क कर दें।"
मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान।

मुंबई, 10 नवंबर (जावेद जमालुद्दीन)

इस्लामी स्कॉलर और माहनामा 'अल-रिसाला' दिल्ली के एडिटर मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान ने मुसलमानों को मशवरा दिया है कि वे लड़ाई और टकराव के तरीक़े को तर्क कर दें और शर-अंगेज़ी की जानिब तवज्जोह न दें। मौलाना आज (10 नवंबर को) जुनूबी मुंबई में वाक़े पाटकर हॉल में 'इस्लामिक रिसर्च फ़ाउंडेशन' के तहत आयोजित किए गए एक जलसे में 'हज़रत मुहम्मद: पैग़ंबर-ए-इंक़िलाब' के मौज़ू पर ख़िताब कर रहे थे। तक़रीर की चंद बातें दर्ज-ए-ज़ैल हैं—

• नया मसला: उन्होंने ख़िताब करते हुए कहा कि अगर किसी इबादत-गाह के सामने से किसी दूसरे फ़िरक़े का जुलूस गुज़रता है और जुलूस में इश्तिआल-अंगेज़ नारे लगाए जाते हैं तो उस वक़्त मुश्तइल न हों और ऐसी बातों को नज़र-अंदाज़ कर दें, क्योंकि टकराव से एक नया मसला खड़ा हो जाएगा।

• कामयाब इंक़िलाब: हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मुताल्लिक़ मौलाना ने कहा कि आपने जो फ़िक्री इंक़िलाब पैदा किया, वह तमाम फ़िक्रों पर ग़ालिब हो गया और आज भी इसका ग़लबा है। इसके बर-ख़िलाफ़ दुनिया में जितने भी सियासी इंक़िलाब बरपा हुए, वे सब-के-सब नाकाम हुए।

• तौहीद की तालीम: मौलाना ने कहा कि हज़रत मुहम्मद ने तमाम पैग़ंबरों की तरह तौहीद की तालीम दी और मुशरिकीन को बताया कि तुम जिन चीज़ों की इबादत करते हो, वे ब-ज़ात-ए-ख़ुद मख़्लूक़ हैं।

• मुहम्मद और तारीख़: अपनी तक़रीर के दौरान मौलाना ने एक शख़्स का ज़िक्र किया, जिसने एक अर्सा क़ब्ल गुफ़्तुगू के दौरान कहा था कि अगर मुहम्मद को तारीख़ से निकाल दिया जाए तो तारीख़ में क्या कमी रह जाएगी और मौलाना ने इसके जवाब में फ़ौरन कहा—

"वही कमी रह जाएगी, जो मुहम्मद से पहले मौजूद थी।"

• मुस्तक़बिल रोशन: मौलाना के मुताबिक़ हिंदुस्तान में मुसलमानों का मुस्तक़बिल काफ़ी रोशन है, शर्त यह है कि वह जज़्बाती तरीक़ा इख़्तियार करने के बजाय पॉज़िटिव तामीरी सोच अपनाएँ। (रोज़नामा 'इंक़िलाब', 11 नवंबर, 1991)

जन्नत का शौक़

क़ुरआन के मुताले का एक तरीक़ा यह है कि आप उसके यूनिवर्सल पैग़ाम को पर्सनलाइज़ करके क़ुरआन से सबक़ हासिल करें। मैंने क़ुरआन का मुताला किया तो मुझे यह समझ में आया कि

क़ुरआन में जन्नत को हासिल करने के लिए बार-बार उभारा गया है। मसलन क़ुरआन की आयत यह है—

> "दौड़ो अपने रब की बख़्शीश की तरफ़ और उस जन्नत की तरफ़, जिसकी वुसअत आसमान और ज़मीन जैसी है। वह तैयार की गई है, अल्लाह से डरने वालों के लिए।"
>
> (3:133)

इस आयत को मैंने अपने एक तजुर्बे से समझा। एक दिन का वाक़िआ है। मैं सुबह के वक़्त काम कर रहा था तो मुझे थकान का एहसास हुआ। फिर मैंने यह सोचा कि अब मेरी उम्र 60 साल से ज़्यादा हो चुकी है, जिसे उमूमी तौर पर ज़िंदगी के आख़िरी मरहले की इब्तिदा समझा जाता है। गोया अब मेरी ज़िंदगी बहुत मुख़्तसर है, मगर साथ ही यह ख़याल आया कि मौत के बाद ला-महदूद ज़िंदगी मिलने वाली है। फिर मैंने सोचा कि अगर मेरी ज़िंदगी के सिर्फ़ दस साल हैं तो मुझे उन दस सालों तक बहुत ज़्यादा सरगर्म रहना चाहिए, ताकि अबदी जन्नत के लिए मज़ीद सरमाया इकट्ठा कर सकूँ। मुझे अबदी जन्नत के तसव्वुर से एक मुहर्रिक अमल (incentive) मिला और मेरे ज़ेहन में नई बात आई कि मुझे वक़्त को ग़नीमत जानना है और मरने से पहले इस 'रब्बानी मिशन' के सारे काम मुकम्मल करने हैं। इस सोच ने मुझे एक नई ऊर्जा दी और मेरी थकान ख़त्म हो गई। मेरी समझ में आया कि यही है जन्नत की तरफ़ दौड़ना यानी जन्नत की याद आपको दुनिया की मुश्किलात भुला दे और आप दोबारा एक नए हौसले और इरादे के साथ ख़ुदाई मिशन में मसरूफ़ हो जाएँ।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने लिखा है कि जन्नत इंसान के लिए बनाई गई है और इंसान जन्नत के लिए, मगर जन्नत उस इंसान को मिलेगी, जो अपने आपको इस दुनिया के अंदर जन्नत के लिए

जीने वाला इंसान बनाए। ख़ुदा उस इंसान के ज़िंदा शऊर का हिस्सा बन जाए। दुनिया की हर चीज़ उसे ख़ुदा की याद दिलाने वाली बन जाए और वह इंसानों के दरमियान ख़ुदा का दाई बन जाए। जन्नत उस इंसान के लिए है, जो सिर्फ़ एक ख़ुदा को अपना सुप्रीम कंसर्न बना ले। (माख़ूज़, माहनामा 'अल-रिसाला'; सितंबर, 2019)

डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम

बीमारी मारिफ़त का ज़रिया

हमारे मिशन के एक साथी बीमार हो गए। जब उनसे गुफ़्तुगू हुई तो उन्होंने कहा कि बीमारी से मुझे बहुत बड़ा सबक़ मिला है। वह यह कि बीमारी से पहले मुझे कभी-कभी यह एहसास होता था कि मैं मिशन में पर्सनल तौर पर शामिल (involve) हूँ तो मिशन का काम अंजाम पा रहा है यानी मेरे बग़ैर मिशन नहीं चल सकता, मगर बीमारी ने मेरे ऊपर यह वाज़ेह किया कि जो कुछ हो रहा है, वह ख़ुदा की तौफ़ीक़ और उसकी मदद से हो रहा है, न कि हमारी ज़ात से। हम तो सिर्फ़ 'ह्यूमन फ़ेस' हैं। यह एहसास इतना शदीद था कि उसने मुझे 'कट टू साइज़' कर दिया। मैंने यह जान लिया कि मेरे करने से नहीं, बल्कि ख़ुदा की मदद से सारे काम चल रहे हैं।

यह वाक़िआ मैंने सुना तो मुझे एक हदीस-ए-रसूल याद आई। पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि जब एक मोमिन बंदा बीमार होता है—

"وَمَوْعِظَةً لَهُ فِيمَا يَسْتَقْبِلُ"

"वह उसके आगे के लिए नसीहत का सामान होता है।"

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 3089)

एक और रिवायत में है कि जब आप किसी मरीज़ की इयादत के लिए जाते तो ये कहा करते थे—

"لَا بَأْسَ طَهُورٌ إِنْ شَاءَ اللهُ"

"कोई हर्ज नहीं, इंशाअल्लाह! यह (रुहानी) पाकी का ज़रिया है।"

(सही अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3616)

इंसान के अंदर एक ख़ुसूसी सिफ़त पाई जाती है, जिसे हस्सासिय्यत (sensitivity) कहा जाता है। हस्सासिय्यत ख़ुदा की एक अज़ीम नेमत है। अगर हस्सासिय्यत न हो तो आदमी के अंदर से बुराई को बुराई समझने का मिज़ाज ख़त्म हो जाएगा। अगर आदमी सेहतमंद जिस्म का मालिक हो तो वह शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर ग़ुरूर-ओ-तकब्बुर और ला-परवाही की नफ़्सियात में जीने लगता है। इस तरह वह एक बे-हिस इंसान बनकर रह जाता है। इसके बर-अक्स जब एक मोमिन इंसान बीमारी में मुब्तला होता है तो वह अपनी बेबसी को दरियाफ़्त करता है। उसके अंदर मॉडेस्टी का मिज़ाज पैदा हो जाता है। बीमारी उसको माद्दी चीज़ों से दूर करके अल्लाह से क़रीब कर देती है। उसके दिल से दर्दमंदी के साथ दुआएँ निकलने लगती हैं।

बीमारी ब-ज़ाहिर एक ना-पसंदीदा वाक़िआ है, लेकिन अगर सही इस्लामी ज़ेहन हो तो जिस्मानी बीमारी आदमी के लिए रूहानी सेहत का ज़रिया बन जाएगी। (डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम)

ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ 276

- डॉक्टर जीवा नंदन (पैदाइश:1945) शहर इरोड (Erode), तमिलनाडु के रहने वाले थे। वे कम्युनिस्ट फ़िक्र से ताल्लुक़ रखने के बावजूद प्रोटेस्ट करने की नफ़्सियात से दूर थे और तामीरी सोच रखते

थे। वे बहुत-से जन-कल्याण के इदारों के ज़िम्मेदार भी थे। वे हमेशा मुसलमानों की फ़िक्री और इल्मी पिछड़ेपन (backwardness) को लेकर फिक्रमंद रहते थे। 2017 में मैं जब मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की अंग्रेज़ी किताब 'Peace Building and Non-Violence in Islam' पर एक तब्सिरा तमिल मैगज़ीन 'सर्वोदय' (Sarvodaya) में छपा तो उसे पढ़कर डॉक्टर जीवा बहुत मुतास्सिर हुए और 'गुडवर्ड बुक्स' (चेन्नई) से राब्ता करके इन्होंने वह किताब मँगवाई और यह भी कहा कि "मैं इस किताब को तमिल ज़बान में तर्जुमा करके शाए करना चाहता हूँ।" (डॉक्टर जीवा बहुत अच्छे ट्रांसलेटर भी थे और उनकी कई किताबें छप चुकी हैं। 'गुडवर्ड बुक्स' (चेन्नई) ने डॉक्टर जीवा को मतलूब किताब फ़ौरन भेज दी और इन्होंने एक हफ़्ते के अंदर उस किताब का तर्जुमा भी मुकम्मल कर दिया। इसके बाद उन्होंने मौलाना के बारे में अपनी सोच का इज़हार इन अल्फ़ाज़ में किया है— "पूरी मुस्लिम क़ौम में मैंने मौलाना की तरह इंटेलेक्चुअल नहीं देखा। यक़ीनन मुस्लिम क़ौम ने न ही उनको समझा होगा और न ही उनके अंदर मौलाना की तामीरी फ़िक्र को समझने की सलाहियत है।" फ़रवरी, 2021 में जब मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के लिए हुकूमत-ए-हिंद की जानिब से 'पद्मविभूषण' अवार्ड का ऐलान किया गया तो चेन्नई के आई.पी.एस. ऑफ़िसर मिस्टर नज़मुल हुदा ने इस मुनासबत से एक मज़मून लिखा था, जो हिंदुस्तान के मारूफ़ अंग्रेज़ी रोज़नामा 'द हिंदू' (The Hindu) में शाए हुआ। इस मज़मून को 'द हिंदू' के तमिल एडिशन में फ़ौरन शाए करने के लिए ट्रांसलेटर की ज़रूरत दरपेश थी। इत्तिफ़ाक़ से उसी वक़्त डॉक्टर जीवा का फ़ोन आ गया। उन्होंने इसकी ज़िम्मेदारी ले ली और चंद घंटों के अंदर ही तर्जुमा करके वह मज़मून हमें भेज दिया। यह मज़मून 18 फ़रवरी, 2021

को मज़्कूरा रोज़नामा में शाए हुआ। डॉक्टर जीवा का शुक्रिया अदा करने के लिए सी.पी.एस. (तमिलनाडु) की तरफ़ से हम तीन अफ़राद मौलाना ख़तीब इसरारुल हसन उमरी, फ़ैज़ कादरी और मैंने इरोड का सफ़र किया और 20 फ़रवरी, 2021 को उनसे मुलाक़ात की। इस मुलाक़ात में उनसे मौलाना की फ़िक्र को लेकर गुफ़्तुगू हुई और यह बात भी हुई कि 'अल-रिसाला' मिशन को तमिल ज़बान में कैसे मुंतक़िल किया जाए, लेकिन यह उनसे हमारी आख़िरी मुलाक़ात साबित हुई। 2 मार्च, 2021 को हमें ख़बर मिली कि डॉक्टर जीवा अब इस दुनिया में नहीं रहे। यह ख़बर सुनते ही हमें यूँ महसूस हुआ, जैसे तमिलनाडु में सी.पी.एस. का एक ख़ैर-ख़्वाह हमसे जुदा हो गया है।

(मौलाना सय्यद इक़बाल अहमद उमरी, तमिलनाडु)

- 'स्पॉटिफ़ाई' (Spotify) एक इंटरनेशनल ऑडियो शेयरिंग प्लेटफॉर्म है। इस पर सी.पी.एस. (यूएस) के मिस्टर असद परवेज़ ने अप्रैल, 2021 में क़ुरआन का अंग्रेज़ी तर्जुमा अपलोड किया, ताकि सारी दुनिया में लोग इसे सुनकर ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से बा-ख़बर हो सकें। अप्रैल, 2022 तक 240409 लोगों ने क़ुरआन का यह तर्जुमा सुनने के लिए डाउनलोड किया। इससे यह मालूम होता है कि सारी दुनिया क़ुरआन के पैग़ाम को जानना चाहती है, ज़रूरत सिर्फ़ यह है कि हम मदऊ तक पीसफ़ुल अंदाज़ में जदीद टेक्नोलॉजी की मदद से इसे पहुँचाएँ।
- अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातहु! आपका रवाना किया हुआ क़ीमती हदिया 'अल-रिसाला' ख़ुसूसी शुमारे की शक्ल में मिल गया है। सरसरी नज़र डालने से अंदाज़ा हो रहा है कि इस ख़ास शुमारे में हज़रत मौलाना मरहूम पर इंतिहाई

क़ीमती मज़ामीन शामिल हैं। पेश-ए-लफ़्ज़ तो पढ़ लिया है, जिससे मालूम हुआ कि दिल्ली में आपकी आमद 1967 में हुई। मुझे वह ज़माना याद है, जब मौलाना मरहूम 'अल-जमीयत वीकली' के एडिटर हुआ करते थे। मैं उनका लिखा हुआ एडिटोरियल बड़े शौक़ से पढ़ा करता था। अल्लाह तआला मरहूम की मग़फ़िरत फ़रमाए और उनके दर्जात बुलंद फ़रमाए। बहुत शुक्रिया, जज़ाकल्लाह ख़ैरन! मिस मारिया के वीडियोज़ माशा अल्लाह बहुत मालूमाती और मुफ़ीद होते हैं, अल्लाह उनको जज़ा-ए-ख़ैर दे। (बद्र-उज़-ज़मान कैरानवी)

Remembering Maulana Wahiduddin Khan: Man of Mission

1. Many thanks to you for sending me the book, special number on maulana Wahiduddin Khan. I am studying Al-Risala from 1985, that is from my school days. Since then I have been a regular reader and have read approximately all his books in Urdu.Please tell me if anyone is associated with the CPS team in Dhanbad. Now it is our duty to spread the message of Maulana to all human beings, that is the message of Allah. Thanks and Regards Yours Sincerely —asif. mazhar1@gmail.com Asif Mazhar, Dhanbad
2. Mr Sajid Ahmed Khan, Nagpur, gave Mr. Infaq of

Sri Lanka the address of the CPS website: www. cpsglobal.org and Spirit of Islam magazine at his request. Mr. Infaq responded as follows: "Now that I have access to the website, I can download many books authored by Maulana Wahiduddin Khan. I have already read one of his books 'The Age of Peace'. I loved that book. I found it when I was in college. After that, I began to search the website and the books where I can get his books, as in our country in Sri Lanka I could not find many of his books. Now Alhamdulillah, I am happy to have found this website where I can find all his English books. I can only read and speak English. I do not know Hindi and Urdu. And I want to learn about Islam. I wanted to ask many things from an Islamic scholar. Now I can. I love it. Thank you very much.

3. These are some of the things that I had learnt from Maulana Wahiduddin Khan: Deconditioning; Introspection; Objectivity; Follow one, Hate none; Patience; Positivity Extensive Study; Being ever ready to accept ones mistakes; Sincerity; Early Rising; Time Management; Planning, Planning and Planning again; Peace; Thinking, Thinking and Thinking again; Avoidance with Trivial Issues; No Reaction; Remembrance of

the Almighty; Dua, Dua and Dua (prayer) Every Time; Discover Yourself; Continuous Effort; Avail all the Available Opportunities; No Excuse, No Complaint; Taking Responsibility; Living with God; Reminding Yourself of the Scenes of the Doomsday; Dont Involve Yourself with Anything without Necessary Competence; Learn, Learn and Learn again; Promoting Dialogue; Adopting the Realistic Approach; Practical Wisdom; Khuda ki Yaad me Rona; Ultimate Courage for Standing for the Truth; Calling People to God — Mr. Azhar Mobarak, Jharkhand.

4. My life changed after I met Maulana. He connected me with God and taught me many things. One of my most significant learning is simple living high thinking — Mr Navdeep Kapur, New Delhi.
5. The teachings of Maulana are the driving force that keeps all of us together and going. Not a moment passes when we do not miss him. Maulana dedicated his life to the mission and guided people on the path of God. May Allah keep him closest to His throne — Ms.Stuti Malhotra, New Delhi)
6. Maulana Sahab for me is still in Delhi. His guidance is around me as usual in the form of his lectures. Every time I listen to his talks, I realize

that every word comes from heaven. The only difference now is that Farhad Sahab does not call me anymore to say "Maulana Sahab aap say baat Karna chahtayhain". Talking to Maulana Sahab and taking notes from his calls was my routine; I still read those notes to seek guidance. May Allah reward him with the highest level of Jannah — Mr Tariq Badar, Lahore.

7. My first interaction with Maulana Wahiduddin Khan, in 2001, is still fresh in my mind. I did not know anything about religion or spirituality back then. He encouraged me to write a paper on, 'I want to live in a world with this brave spirit that I will influence others rather than getting influenced by them.' This quote marked the start of my relationship with Maulana. I had never had a proper understanding of religion until Maulana and CPS instilled it in my mind. I swear to God that I will dedicate myself to this mission for the rest of my life. I pray to God to protect all CPS members from distractions and to assist us in realizing Maulana's vision. May Allah bless Maulana, give him a special place in His neighborhood, and shower him with his limitless mercy and rewards — Mr. Amir Mori, Kashmir.
8. Maulana, you are missed, loved, and remembered.

You have shown us the path of truth and made us understand the meaning of life and death and beyond. This statement of yours will always be a beacon for me.

'ज़िंदगी क्या है? मौजूदा दुनिया में इम्तिहान की मोहलत।
मौत क्या है? आख़िरत की दुनिया में बिल-जब्र दाख़िला।'

May Allah grant him the highest place in Jannah, Ameen. — Ms. Shabina Ali, Kolkata.

RNI No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

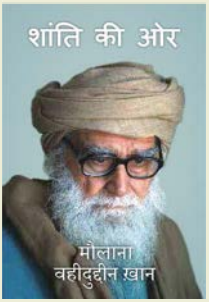

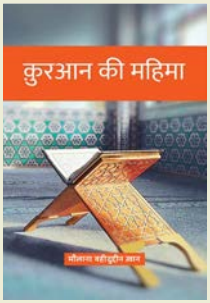

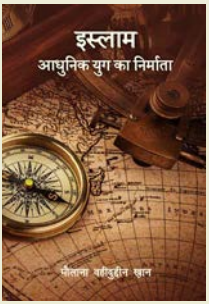

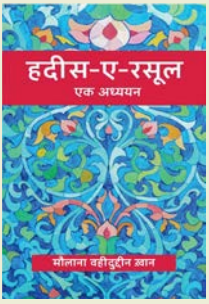

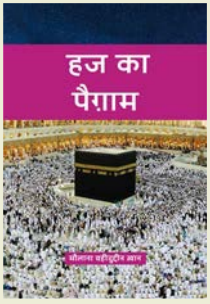

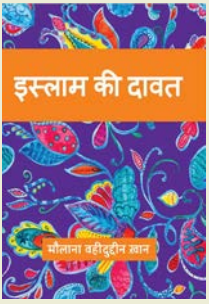

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

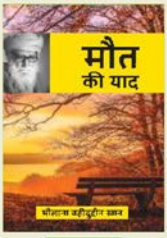

₹40/-

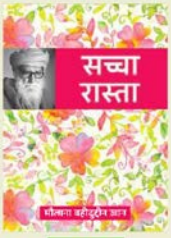

₹20/-

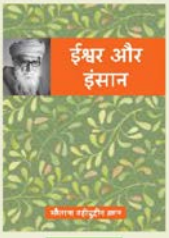

₹40/-

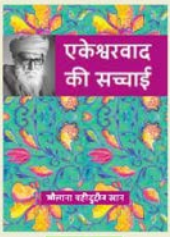

₹30/-

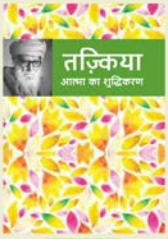

₹45/-

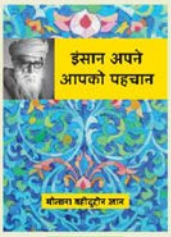

₹20/-

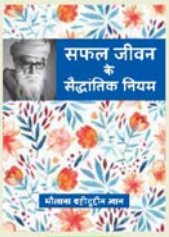

₹40/-